पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	सन्तैतिक	[illegible]
१५	दिनार	दीवार
२४	[illegible]	जसोड़
६	[illegible]	हफा
१३	[illegible]	राठोड
२०	भूत कालिन	भूतकालीन
२०	परणिता	परिणीता
६	स्विकार	स्वीकार
२०	निरिक्षण	निरीक्षण
१६	वदका	वदला
२१	उनके	उनका
१५	व्याधी	व्याधि
२३	अपनि	अपनी
३	अपना	अपने
१८	वीकाजी ने	वीकाजी
६	पवनों	यवनों
१६	याग	यज्ञ
१८	महावल	महारावल
१०	अङ्किकार	अङ्गीकार
११	वीकानेरके	वीकानेर महाराजके
१४	नवरोज	नवरोजे
१	तत्कालिन	तत्कालीन
२५	कवेरा	कवरो
२६	कलाकत	कलावत
१	सारीखन	सारीखो न

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९४	१६	सुसिल	सुशील
,,	२२	कार्तीक	कार्त्तिक
१०१	२	अधिनस्थ	आधीनस्थ
१०२	४	का	के
,,	,,	का	के
१०४	८	गजारूढकर	गजारूढ करवाकर
१०५	११	सर्वोपिरि	सर्वोपरि
१०६	२१	प्रवृष्ट	प्रकृष्ट
१०७	१८	जसवन्तसिंहजी	जसवन्तसिंहजी; जो
११२	१५	छिन	छीन
११३	२५	देख कर	देखकर महाराज वखत-सिंहजी ने
११६	३	उपजाउ	उपजाऊ
,,	२३	जैतीसिंह	जैतसिंह
१२३	१	महारालजी,	महारावलजी
,,	,,	हृदम,	हृदय
१२५	१०	दीनों	दोनों
१२७	१३	प्रभावशाली	प्रभावशाली
१३०	२	मूढधिपः	मूढधियः
,,	२७	राजपीरवार,	राजपरिवार
१३६	१	स्थाही	स्थायी
१३७	२१	आज्ञानुवर्तीयों	अज्ञानुवर्त्तियों
१५५	१३	से हुआ	से विवाह हुआ
,,	२६	१९२१ की	१९२१ के
,,	२७	अनिच्छापूर्क वंस्वतः	अनिच्छापूर्वक स्वतः

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५६	५	कछ भुज	कछभुज
,,	९	कर्म्मचारीयों	कर्म्मचारियों
,,	२१	सहगढ़	शाहगढ़
१५७	१२	एटनपुर	एरनपुर
,,	२१	इस्वी	ईस्वी
,,	२२	महरावल	महारावल
१५९	५	कच्छी	कच्छ
,,	,,	उसको	उनको
१६१	४	कालसिंह	लालसिंह
,,	११	एकाद्वि	एकाद्वी
,,	१५	के	का
१६२	१	के	का
,,	४	मानसिंह	महाराज मानसिंहजीका स्वर्ग-वास गत वर्ष ही हुआ है।
१६३	१८	शालिवाहन	शालिबाहनजी
,,	२१	जुवारसिंह	जुवारसिंहजी
१६३	२२	महाराज मानसिंहजी अभी तक विद्यमान हैं।	अत्यन्त खेदका विषय है कि इस इतिहास के मुद्रित हो जाने के पूर्वही महाराज मानसिंहजी का स्वर्गवास हो गया।
	२४	जुवारसिंह	जुवार सिंहजी

—:o:—

परिशिष्ट।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	४	नामी सिन्ध	नामी राजा सिन्ध
	,,	रहा	वसा

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	७	सालवाहन	शालिवाहन
,,	६	किला	किले
,,	१०	सालवाहन	शालिवाहन
,,	११	,,	,,
,,	१६	उस्से	उससे
२	१	खेरों	घेरों
,,	४	बुन्याद	बुनियाद
,,	१६	सालवाहन	शालिवाहन
,,	२०	जाडीजा	जाडेजा
,,	२२	सालवाहन	शालिवाहन
,,	२५	तीमूर	तैमूर
,,	२८	खानदा मे	खानदान से
३	१	सालवाहन	शालिवाहन
,,	६	खिताव	खिताब
,,	८	यादय	यादव
,,	१२	शोनतपुर	शोणितपुर
,,	१३	उसने अपने नवासे उदनक	उसने उदनक
,,	१४	शोनितपुर	शोणितपुर
,,	१६	उस्से	उससे
,,	२२	आप राज किया	आपही उसका राजा बन बैठा
,,	२४	भी राजकिया	भी उसने राजकिया
४	११	नगरठट्ट	नगरठट्टा
५	२०	भुमई	बम्बे

—:o:—

प्राक्कथन.

विक्रमीय विंशति शताब्दीका समय सभ्य संसार में उन्नतियुगके नाम से प्रख्यात है। प्रस्तुत समय में प्रत्येक जाति अपनी सर्वाङ्गीन समुन्नति में तत्पर है। इसी युगधर्म के प्रबल प्रभाव से चिरकाल पर्य्यन्त अखिल विश्व के महोपकारार्थ अनवरत परिश्रम करने के कारण विश्रामार्थ प्रगाढ़ निद्रावस्था में पड़ा हुआ जगद्वंद्य भारतवर्ष भी इस समय उनिद्रित होकर इस वार्तमानिक उन्नति की दौड़ में अपने अनुरूप स्थान को प्राप्त करने के लिये अधिक उत्कण्ठित होरहा है।

परन्तु इस युग में चिर निद्रित जाति की जागृति के अन्यान्य मुख्य साधनों में से उसका प्राचीन इतिहास भी इस सभ्य-संसार में सर्वोत्कृष्ट साधन प्रमाणित हो चुका है। पूर्वजों के गुण गौरव की स्मृति से उद्बोधित अवनत जाति भी पारस्परिक अन्तर्जातीय क्षुद्र भेद भावों को भुला कर अपने में संगठन शक्ति का प्रादुर्भाव करती हुई राष्ट्रीयता के ऐक्य-सूत्र में आवद्ध हो जाती है।

इतिहास के इस अलौकिक महत्व से हमारे पूर्वज सम्यक्तया परिचित थे। काश्मीर के प्रसिद्ध विद्वान् कल्हण संस्कृत साहित्य के ऐतिहासिक ग्रन्थ राजतरंगिणी के प्रारम्भ में ही

इतिहास के महत्व को इस प्रकार प्रतिपादन करते हैं:—

कोऽन्यःकालमतिक्रान्तं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः ।
कविं प्रजापतिं त्यक्त्वा रम्य निर्म्माण शालिनम् ॥ १ ॥

अर्थात् सूक्ति रूपी नवीन सृष्टिको उत्पन्न करने वाले कवि-रूपी ब्रह्मदेव के सिवाय अतीत काल को वर्त्तमान में परिणित करने का साहस और कौन कर सकता है ।

यद्यपि विधर्मियोंके अनवरत आक्रमण से ऐतिहासिक ग्रन्थोंके नष्ट भ्रष्ट हो जाने के कारण संस्कृत के सुविस्तृत सहित्यार्णव में भी राजतरङ्गिणी, श्री हर्ष चरित और विक्रमाङ्कदेव चरित के अतिरिक्त अन्य सब ऐतिहासिक ग्रन्थरत्न अभी तक उपलब्ध नहीं हुये हैं । तथापि अन्वेषण करने पर अष्टादश पुराण, महाभारत रामायण आदि ग्रन्थों में वहुत सी प्राचीन ऐतिहासिक वास्तविक घटनाओं की उपलब्धि हो सकती है।

इस समय पाश्चात्य विद्या के संसर्ग से स्वदेशीय इतिहास की अभिज्ञता प्राप्त करने की अभिरूचि नवयुवक समाज में उत्तरोत्तर बढ़रही हैं देशके लिये यह अनल्प सौभाग्य का विषय है। पुराणों में वर्णित भारतवर्ष के परम प्रतापी सोम सूर्य्य वंशके साहस सम्पन्न वृत्तान्तों का पाठ यदि आर्य्य जनता के शरीर में नवीन शक्ति का संचार करे तो इस में आश्चर्य ही क्या है परन्तु भाग्य विपर्य्यय से वारम्वार आक्रान्त तथा पराजित होकर इस विस्तृत प्रदेश की मरूभूमि में ही अपने हत् भाग्य की अन्तिम परीक्षा करने वाली उन्हीं पुराणप्रसिद्ध सोम सूर्य वंश की सन्तान की अर्वाचीन वीर रसपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओंकी स्मृति भी अभ्युदयाभिलाषी आर्यशिशु के हृदय पट पर अङ्कित होकर नवीनोत्साह का अनल्प संचार नहीं करती है।

राजपूताने में प्राचीन मर्य्यादा और अपने वंश गौरव के लिये भट्टीवश बप्पारावल की सन्तान से भी अधिक अभिमान रखता है, उसकी प्राचीनता यवनों, यूनानियों के अति प्राची-न ऐतिहासिक ग्रन्थों से अच्छी प्रकार प्रमाणित हो चुकी है। म्लेच्छ धर्म के अभ्युदय काल में भी उसकी राज्य सत्ता का अव्याहत प्रचार काबुल, कंधार, गजनी आदि प्रदेशों में था। परन्तु समय बड़ा परिवर्तनशील है। क्रूर काल की कुटिल गति के प्रभाव से किसी देश वा जनसमूह की स्थिति सदैव एकसी नहीं रह सकती। समय की उस परिवर्तन शालिनी प्रगति से:—"नीचै यास्यत्युपरिच्च दशा चक्रनेमिक्रमेण" प्रत्येक देश वा जाति की अवस्था चक्र की नेमि के समान प्रतिक्षण उन्नति और अवनति के रूप में परिणित होती रहती है। यही कारण है कि जहां पहिले पूर्ण प्रकाश था आज वहां निविड़ अन्धकार है और जहां पहले अज्ञान का अटल साम्राज्य था आज वहां प्रज्ञा भानु का पूर्ण प्रकाश है। समय के इस अदृष्ट प्रभाव से आवारिधिभूमण्डल स्वराज्य सुख का अनुभव करने वाली श्री कृष्ण की सन्तान उन्नति और अवनति जन्य सुख दुःखों का धैर्य के साथ सम्यक्तया अनुभव करके निर्मम वेदा-न्ती के समान अभीतक अपने अस्तित्व को धारण करती हुई भारत के अप्रख्यात मरूदेश के अत्यन्त संकुचित अनुर्वर भूभा-गमें अभीतक आनन्द पूर्वक तटस्थ होकर अपने इस दुःखमय जीवनको व्यतीत कर रही है, परन्तु राजपूत भक्त टॉड साहब के सिवाय मरूस्थली में सबसे प्रथम अपने आधिपत्य का प्रचार करने वाले भट्टि वंशके कौतूहल प्रद इतिहास को प्रका-शन करने का प्रयत्न अभीतक किसि भी इतिहास प्रेमी ने नहीं किया है। इस का एक मात्र कारण केवल इस प्राचीन प्रतिष्ठित राज्य की वार्तमानिक परिस्थिति

है जिसने इस विंशति शताब्दी में भी इस को नवीन भारत के सांसारिक प्रभाव से सर्वथा वञ्चित कर रक्खा है। विस्तृति के हिसाब से राजस्थान की समग्र रियासतों में इसका तीसरा नम्बर है परन्तु राजपूताने की इस वास्तविक मरूभूमि में रेल की तो कौन कहे कच्ची सडकों तक का अभाव है। यहां के निवासी अभी तक रात्रि में आकाशस्थ ध्रुवदेव की कृपासे दिक् ज्ञान को प्राप्त करते हुये इस वालुकामय विस्तृत मार्ग को उष्ट्र के द्वारा तय करके अपने प्राप्यस्थान को वड़ी कठिनता के साथ पहुँचते हैं। इसी परिस्थिति के कारण अन्य प्रान्तीय की तो कौन कहे एतद्देशीय जन भी स्वदेश प्रेममें मुँह मोडते दृष्टिगत होते हैं।

इस प्राचीन राजधानी के अभ्रंलिह राजकीय प्रासाद तथा धनिकों की हवेलियें, देव मन्दिर आदि अनेक अद्भुत तथा दर्शनीय स्थान अभी तक भी यहां के प्राचीन भूपतिगण के समृद्ध सोभाग्य के ज्वलन्त निदर्शन स्वरूप हैं। परन्तु भूपतिगण के कीर्ति कलाप की प्रख्याति सुकवि की सत् कृपा पर अवलम्बित है। निरपेक्ष सुकवि गन्धवाह (वायु) के समान पुष्पपराग सदृश नरपति गण के कीर्ति कलाप से प्रत्येक दिशा व्याप्त करदेता है। विक्रमाङ्कदेव चरित के प्रणेता वैदर्भ लीलानिधि काश्मीर के प्रसिद्ध पण्डित विल्हण भट्ट भी कीर्ति कामुक नरपतियों को इसी प्रकार का सदुपदेश प्रदान करते हैं:—
पृथ्वीपते स्न्ति न यस्य पार्श्वे कवीश्वरास्तस्य कुतो यशांसि। नृपा कियन्ता न वभूव भूर्व्या, जानातिनामापि न कोऽपि तेषाम्॥(अर्थात्) जिस भूपति के पास सुकवि नहीं है उसके यशकी प्रख्याति कभी नहीं हो सकती। इस संसार में सृष्टिके प्रारम्भ से आज तक असंख्य भूपति हो गये हैं परन्तु सुकवियों को सत् कृपा के अभाव से उन सब के नाम तक भी कराल

काल के गाल में कवलित हो गये हैं । पिछले समय से इस प्राचीन राज्य में भी दुर्भिक्षों के अनन्त आक्रमणों से तथा अनेक प्रकार की दैविक आपत्तियों के कारण विज्ञ जनों का अभाव सा हो रहा है; समुचित वृत्ति के अभाव से प्रजा प्रतिवर्ष अन्यान्य देशों में निवास करने के लिये जा रही है । कई वर्षों से विदेशों में निवास करने के कारण व्यापार से समृद्ध हुई प्रजा भी मार्ग आदि के वर्णनातीत कष्टों का स्मरण करके स्वदेश में आने का साहस नहीं करती । ऐसी दशा में किसी देशी विद्वान् ने स्वदेश के इतिहास को सर्व साधारण में प्रसिद्ध करने के साहस नहीं किया तो इस में कौन सी आश्चर्य की बात है ।

मैं कई दिनों से इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पादन करने का विचार कर रहा था परन्तु विदेश में निवास करने के कारण अपने पास ऐतिहासिक सामग्री के अभाव से तथा अन्यान्य कार्यों की बाहुल्यता से इस की तरफ उचित ध्यान नहीं दे सका अब की समर वैकेशन् (ग्रीष्मावकाश) में मैं ने इस कार्य को समाप्त करने का दृढ़ विचार कर लिया । स्वदेश में जाकर ऐतिहासिक तत्वों के अन्वेषण करने के पश्चात् यदि इस कार्य को हाथ में लेता तो इससे भी अधिक सफलता प्राप्त कर सकता पर समय की संकीर्णता से मैं ऐसा नहीं कर सका। ऐसी दशा में इसमें बहुत कुछ त्रुटियें रहने की संभावना है परन्तु स्वदेश प्रेमसे उत्पन्न हुई उत्कण्ठा मुझे इस कार्य में शीघ्रता करने को बाधित कर रही है इस से इतिहास प्रेमी मेरी इस अल्पज्ञता को अवश्यमेव क्षमा करेंगे ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।

सहृदय सर्वस्व

श्रीहरि दत्त गोविन्द व्यास।

जैसलमेर का इतिहास ।

उत्पत्ति ।

भाटी वंश के इतिहास को साद्यन्त पढ़ने के पश्चात् उस की सत्यता के विषय में अन्यथा कल्पना करने या सन्देह करने की जरा सी भी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । इस के दो मुख्य कारण हैं। एक तो यह कि इस के प्राचीन इतिहास लेखक ने इन्द्रदेवके मेरूदण्ड से या अग्नि कुल, आदि से इस की नवीन उत्पत्ति का आरम्भ नहीं किया है दूसरी बात यह है कि इस इतिहास लेखक ने इतिहास के प्रारम्भ में आक्रमणकारी विदेशियों के साथ इस जाति के संघर्षण का ऐसा सप्रमाण और वास्तविक वर्णन किया है कि कोई भी निष्कपट इतिहास लेखक वा समालोचक उस को अस्वीकार नहीं कर सकता । किसि भी प्रकारके दृढ़ प्रमाणों के विना अन्ध विश्वास पर या गतानुगतिक न्याय से चिर-प्रतिष्ठित सोम सूर्य की सन्तान की उत्पत्ति के विषय में सीदियन आदि विदेशी जाति की कल्पना करना सर्वथा अनुचित है । इन्द्र के मेरूदण्ड के प्रभाव से और ब्राह्मणों के मन्त्रों के प्रभाव से अपनी उत्पत्ति को बतलाने वाली जातियों के विषय में भी अन्य कल्पना करने की कोई आवस्य-कता नहीं क्यों कि भारतवर्ष में प्रबल पराक्रमी वंश की उत्प-त्ति को दैव कला सम्पन्न वर्णन करने की रीति अति प्राचीन

काल से ही प्रचलित है। भारत के प्रत्येक प्रतापी राजसिंह की उत्पत्ति का उल्लेख अति प्राचीन वेद पुराणादि में भी अलौकिकता के साथ किया गया है। आर्य्य कवियों ने इस के कई एक उपयुक्त कारण समझे थे। १—सामान्य वंश से राजवंश को उत्कृष्टता दिखाना, २ पराजित राजा को उसके पूर्व पुरुषों की अद्भुत उत्पत्ति की स्मृति दिला कर उसके हतोत्साहित हृदय में अभिनव स्फूर्ति का संचार करना तथा पवित्र कुल-गौरव की स्मृति से उन्मार्ग गामी राजन्यगण की चित्तवृत्ति को अनार्य तथा जुगुप्सित कार्यों से हटा कर सत्य सनातन धर्म में लगाना इत्यादि अनेक कारण हैं।

जैशलमेर का भाटी वंश अपने आप को यदुवंशी मानता है अतः श्री कृष्ण भगवान् पर्य्यन्त उसका संक्षिप्त विवरण प्रथम उल्लेखनीय है। चन्द्रवंश के आदि प्रवर्तक भगवान् बुधदेव की राज्यप्राप्ति के विषय में श्रीमद्भागवत महापुराणके नवम स्कंध में लिखा है कि गत कल्प के अन्त में नवीन सृष्टि को उत्पादन करने की अभिलाषा से आदि नारायण श्री हरिने "एकोऽहं बहुस्यामि" अर्थात् मैं एक में से अनेक रूपों में परिणित हो जाऊं"। ऐसा विचार करके अपनी नाभि में से सृष्टिकर्ता सुरज्येष्ठ ब्रह्मदेव को उत्पन्न किया। उन्होंने अपने मन से मरीचि को पैदा किया। मरीचि ऋषि ने तपोबल से कश्यप जी को उत्पन्न किया परन्तु इस प्रकार की मानसिक सृष्टि से संसार की वृद्धि न देख कर कश्यप जी ने ब्रह्माजी के पुत्र दक्षप्रजापति की अदिति नाम की कन्या के साथ विवाह किया। इसी आदि दम्पति से विवश्वान् नामक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। उन्होंने संज्ञा नाम की स्त्री से श्राद्धदेव (मनु) को पैदा किया।

श्राद्धदेव ने पुत्र-प्राप्ति की अभिलाषा से अपने गुरू ब्रह्मपुत्र वसिष्ट महर्षि से यज्ञ करवाया परन्तु होता की असावधानी से उस यज्ञ कुण्ड में से पुत्र के स्थान में इला नाम की कन्या का आविर्भाव हुवा। इस व्यतिक्रम से अपने यजमान राजा श्राद्धदेव को अत्यन्त व्यथितचित्त देख कर महर्षि वसिष्ट ने तपोवल से इला को पुरूष बना कर उस का सुद्यम्न नाम रक्खा। सुद्यम्न एक दिन मृगयार्थ भूतभावन महादेव जी के केलि-वन में चला गया। वहीं पर, उस वन के दैवी प्रभाव से वह अपने अनुचरों सहित आत्म स्मृति हीन होकर भावीवश फिर सुन्दर स्त्री के रूपमें परिणित होगया। वह सुन्दर स्त्री (इला) घूमती हुई एक दिन उस केलि वन की सीमा से बाहर निकल आई। दैवयोग से भ्रमणार्थ आये हुये कुमुदिनीनायक भगवान् चन्द्रदेव (चन्द्रमा) के पुत्र बुध से वहीं पर उस का प्रेम-सम्बन्ध होगया। बुध के वीर्य्य से इला (सुद्यम्न) में से पुरूरवा नामक अत्यन्त सुन्दर परम प्रतापशाली चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुआ।

बुधसे श्री कृष्ण पर्य्यन्त भूतकालीन चन्द्रवंशी राजाओं की सूची वंशप्रवर्त्तक चन्द्रदेव के पुत्र बुध से—

१. बुध। बुधके पुरूरवा-पुरूरवा ने प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग) को अपनी राजधानी बनाई।

२. पुरूरवा के आयु। ३ आयु के ४ नहुष— राजा नहुष अत्यन्त प्रतापी था। इसने स्वर्गपति इन्द्रदेव की अनुपस्थिति में स्वर्ग लोक का शासन किया था। एक दिन शची (इन्द्राणी) के अनुपमरूप से मोहित होकर उसके पास शीघ्र पहुँचने की अभिलाषा से अपनी पालकी को उठाने के लिये उसने ब्राह्मणों से सविनय। अनुरोध किया तेजस्वी ब्राह्मणों ने

उस की इस अनुचित प्रार्थना पर क्षुब्ध हो कर उस को उसी समय राजच्युत कर दिया। उस के पुत्र का नाम था ययाति। ययाति के यदु हुआ—राजा यदु ययाति का ज्येष्ठपुत्र था। ययाति ने दो स्त्रियों से विवाह किया था। उसकी प्रथम परणीता औशनस् गोत्रकी देवयानी नामक रानी से कुमार यदू का जन्म हुआ। यदू के चार भाई और थे। ययाति ने संसारिक सुख से अतृप्त होकर अपने ज्येष्ठ पुत्र कुमार यदू से कहा कि तुम अपना यौवन कुछ वर्ष के लिये मुझे दे डालो, इस पर यदू ने कहा कि आपने तो बहुत दिवस ऐश आराम किया है मैं अपनी जवानी को स्वयं न भोगकर प्रथम ही आपको नहीं दे सकता। ज्येष्ठ पुत्र के इस प्रकार के कड़े जवाब से ययाति अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र (यदू) को युवराज पद से वञ्चित कर दिया। यदू के चार पुत्र हुये-१ सहस्रजित, २ क्रोष्टा, ३ नल, ४ रिपु।

यदू से प्रथम का यदूका वश चन्द्र (सोम) वंशके नामसे विख्यात था, परन्तु यदू के अत्यन्त वीर और प्रतापी होने के कारण उस की भावी सन्तति यादव नामसे प्रख्यात हुई।

६ क्रोष्टा (यदू का द्वितीय पुत्र) ७ वृजिनवान्, ८ श्वादि ९ रुशेकु, १० चित्ररथ, ११ शशिविन्दू,—राजा शशिविन्दू ने दश हजार कन्याओं का पाणिग्रहण किया और प्रत्येक रानी से अनन्त सन्तति पैदा की तथा चक्रवर्ती पद को धारण किया। १२ भोज, १३ प्रथुश्रवा १४ धर्म्म, १५ उशना, १६ रूचक १७ ज्यामोघ। रूचक के पुत्र ज्यामोघ ने भोजवश की शैव्या नामक कन्या के साथ विवाह किया था। परन्तु वह वन्ध्या थी। एक दिन राजा ज्यामोघ भोजवंशी शत्रु राजा की रूपवती कन्या को बलात् अपहरण कर रथ पर बैठा कर

अपने घर ले आया, रानी शैव्या ने बाहर निकल कर ज्यामोघ से पूछा "आज मेरी जगह पर किसको बैठा लाये हो ?" राजा ने भयभीत होकर उत्तर दिया "हे महारानी ज यह तुम्हारी पुत्र वधू है"। इस पर रानी ने कड़क कर जवाब दिया "मैं तो वन्ध्या और असपत्नी हूं इस लिये इस समय पुत्र वधू की क्या आवश्यकता है"। राजा ने विनय से कहा-"महारानी जी! जब आपके कुंवर होगा तभी इसकी आवश्यकता पड़ेगी"। इस प्रकार देवताओं ने राजा को प्राण संकट में पडा हुआ समझ कर शैव्या की वन्ध्यावस्था को दूर किया। थोडे ही दिनों के पश्चात् ज्यामोघ ने शैव्या में से विदर्भ नाम पुत्र उत्पन्न किया परन्तु उस समय ज्यामोघ के विषय में यह प्रवाद सर्वत्र प्रचलित हो गया था —

भार्यावश्यास्तु ये केचित् भविष्यंत्यथवा मृताः।
तेषांतु ज्यामघः श्रेष्ठ शैव्या पति रभून्नृपः॥

अर्थात् स्त्री से डरने वाले जितने राजा हो गये हैं अथवा होने वाले हैं उन सब में महारानी शैव्या के पति ज्यामोघ ही सर्व श्रेष्ठ है। १८ विदर्भ के १९ क्रथ। क्रथ के कुन्ति। २० कुन्ति के धृष्टि। २१ धृष्टि के निर्वृति। २२ निर्वृति के दशार्ह। २३ दशार्ह के व्योम, २४ व्योम के जीमूत, २५ जीमूत के विकृति, २६ विकृति के भीमरथ, २७ भीमरथ के नवरथ, २८ नवरथ के दशरथ, २९ दशरथ के शकुनि, ३०शकुनि के करंभि, ३१ क-रंभि के देव रात। ३२देवरात के देव क्षत्र। ३३ देवक्षेत्र के मधु। ३४ मधु के कुरुवश। ३५ कुरुवशः के अनु३६। अनु के पुरुहोत्र। ३७ पुरुहोत्र के आयु। ३८ आयु के सात्वत।

(आयु के अनुरुद्ध और उसके वज्र नामक पुत्र हुआ)
३९ सात्वत के अन्धक।४०अन्धक के भजमान। ४१ भजमान

के विदूरथ। ४२ विदूरथ के शूर। ४३ शूर के भजमान। ४४ भजमान के शनि। ४५ शनि के स्वयंभोज। ४६ स्वयंभोज के हृदीक। ४७ हृदीक के देवमीढ़। ४८ देव मीढ के शूर। ४९ शूर के वसुदेव। ५० वसुदेव के श्रीकृष्ण। ५१ श्रीकृष्ण—आनन्द कन्द सच्चिदानंद भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी के अनेकानेक अद्भुत कार्य भागवतादि पुराणों में वर्णित है। उन्होंने कुनणपुर के राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी से विवाह किया और इसी महोत्सव के उपलक्ष में इन्द्र महाराज ने इनको मेघाडम्बर नामक छत्र उपहार में दिया। यह छत्र अभी तक उनकी सन्तति के अधिकार में सुरक्षित है। और उसी दिन से श्री कृष्ण की सन्तान अपने को छत्राला-यादव के नाम से परिचय देती है। भगवान् कृष्ण चन्द्र ने अपनी राजधानी द्वारिका को बनाई। श्री कृष्ण के पाटवी (युवराज पद के अधिकारी) पुत्र प्रद्युम्न, उसके अनुरुद्ध और अनुरुद्ध के वज्र। एक दिन बहुतसे यदुवंशी बालकों ने भगवान श्रीकृष्ण के साम्ब नामक पुत्र को स्त्री बनाकर तथा उसके पेट को बाँध कर दुर्वासादि ऋषियों से पूछा कि इसके क्या सन्तान होगी? दुर्वासा ने क्रोधित होकर कहा कि इसके पेट में से एक मूसल होगा जिस से सब यादवों का नाश होगा। निदान उस दिवस से ठीक नवमें महीने साम्ब के पेट में से मूसल निकला। यादवों ने उसका चूर्ण करके समुद्र में डाल दिया। दैववश समुद्र की लहरों से बह कर वह लोह चूर्ण समुद्र के किनारे पर तीक्ष्ण घास के रूप में पैदा होगया। एक दिन सूर्य ग्रहण के उपलक्ष्य में वसुदेव और वज्र के सवाय आबाल वृद्ध समस्त यादव समुद्र स्नान करने के लिये प्रभास क्षेत्र पर गये। वहां अधिक मदिरा पान करने से उन्मत्त होकर उसी तीक्ष्ण घास के प्रहार से आपस में लड

कर कट मरे। पाण्डपुत्र अर्जुनने वज्र नाम को मथुरा पुरी में राज्यपद पर अभिषिक्त किया।

वज्रके पुत्र सुवाहु, प्रतिबाहु आदि राजा हुये हैं परन्तु भाटी जी की उत्पत्ति से पहले के राजाओं की सख्या में तथा नामों में भी जेसलमेर के प्राचीन इतिहास में श्री मद्भागवत में तथा हरिवंश पुराण में और टाड राजस्थान में बहुत अन्तर है। वज्र के प्रतिवाहु नाम का पुत्र हुआ।(टाड साहब ने न मालुम किस आधार पर वज्र के नाभ और चीर नामक पुत्रों का अपने इतिहास में उल्लेख किया है)। बाहुबल, और प्रतिवाहुके (भा गवत के मतसे शान्तसेन, उसके शतसेन)उग्रसेन। उग्रसेन के सूरसेन नामका पुत्र हुआ। बाहु बलके नाभ वाहु और उसका १० सुवाहु नामक पुत्र पेदा हुआ। सुवाहु ने अजमेर के नन्दी नामक राजा की कन्याका पाणिग्रहण किया। उस नव परणीता स्त्री ने थोडे ही दिनों के पश्चात् अपने पति (सुबाहु) को विष देकर मार डाला। सुबाहु ने दो और विवाह किये थे। एक तक्षक (नाग) जाति की कन्या के साथ और दूसरा साँ-भर नरेश की कन्या के साथ। पहली में से रज नामका पुत्र पैदा हुआ और दूसरी में से चीर और यदूभानू नाम के दो पुत्र हुये। चीर के चूडा, समा आदि पुत्र हुये। उनकी सन्तति ने पहले गिरनार देश में अपना आधिपत्य जमाया और इस सम-य वे गुजरात प्रदेश के सोरठ आदि देशों में भोमिपा यादव के नाम से प्रसिद्ध हैं। दूसरे यदू भानु की सन्तति यादव नाम से प्रख्यात है। पहले इनका राज्य डींग (भरतपुर) मे था अब करौली में हैं।

११ रज ने मालवा (उज्जैन) के राजा वैरसी की कन्या सौभाग्य सुन्दरी से विवाह किया। महारानी सौभाग्य सुन्द री-

ने गर्भावस्थामें एक स्वप्न देखा कि उस के पेट में से एक हाथी उत्पन्न हुआ है। वालक के उत्पन्न होने पर ज्योतिषियों ने उसका नाम गज रक्खा। १२ महाराज गज अत्यन्त ही प्रताप शाली राजा हुये हैं उन्हों ने अपने अतुल पराक्रम से असंख्य म्लेच्छ राजाओं को मार कर गान्धार प्रदेश में युधिष्ठिर सम्वत् ३०८ में गजनी नामक नवीन नगर वसा कर उसको अपनी राजधानी बनाई। उसकी स्मृति के विषय में यह दोहा अभी तक इस देश में सर्वत्र प्रचलित है।

दोहा — तिन शत अठ शक धर्म्म विशाखे सित तीन।
रवि रोहण गज वाहुने गजनी रची नवीन॥

अर्थात् युधिष्ठिर सम्वत् ३०८ वैशाष शुक्ला तृतीया रविवार और रोहिणी नक्षत्र में महाराज गज ने अपने प्रचण्ड भुजदण्ड के प्रताप से म्लेच्छ गणको पराजित करके गजनी नामक नवीन नगर की प्रतिष्ठा की। इस भयकर संग्राम में खुरासान और रूम प्रदेश के अधिपति दोनों राजाओं ने ३०००० सैनिकों के साथ महाराज गजका सामना किया था। उस समय मथुरा से लाहौर मुलतान और काबुल कन्धार पर्य्यन्त महाराज गजका एकाधिपत्य था। महाराज गजने गजनी नगर के सीमान्त ग्राम कुक्षके पास आगे जाकर शत्रुओंका सामना करके अपने प्रचण्ड भुजदण्ड के प्रवल प्रताप से समस्त शत्रुगण को परास्त करदिया। उन्हों ने विजयोन्मत्त होकर कश्मीर-पति तत्कालीन महाराज कन्दर्पकेलि को अपने दर्वार में सामन्त श्रेणि में उपस्थित होने के लिये बुलवाया परन्तु स्वाभिमानी कन्दर्पकेलिने विना युद्ध के उनका आधिपत्य मानना अस्वीकार किया। इससे महाराज गज ने अत्यन्त क्रोधित हो कर उसी समय काश्मीर पर आक्रमण किया। महाराज कन्दर्पकेलिने उन के प्रवल पराक्रमसे आतत होकर अपनी

एक मात्र कन्या उनको समर्पण की। इस प्रकार महाराज गज अपनी शासन शक्तिको आर्यावर्त के पश्चिमोत्तर प्रदेशों में विस्तार कर के अतिवृद्धावस्था में स्वर्ग लोक को सिधारे। युधिष्ठिर सम्बत् ३०८ से विक्रमीय सम्बत् के प्रारम्भ पर्य्यन्त अर्थात् महाराज गजसे महाराज तीसरे गजसिंह पर्य्यन्त यदूवंश के निम्न लिखित ७४ राजा होगये है। ये सब यवनों से आक्रान्त होकर क्रमशः पश्चिम की तरफ हटते ही गये।

१३ रजसेन १४ प्रतिवाहु यवनों से पराजित होकर पञ्जाब में भाग गया। १५ दत्तबाहु १६ बाहुबल, १७ सुभाय, १८ देवरथ, १९ पृथ्वी सहाय, २० महीपति, २१ मर्य्याद पति, महाराज मर्य्याद पति अत्यन्त ही वीर थे इन्हों ने एक लक्ष सेना के साथ गजनी पर आक्रमण कर के उस पर अपना आधिपत्य जमाया तथा जेहल भाटको क्रोड पसाव दिया। २२ सेवातसैन, २३ सूर सैन, २४ उदीपसैन, २५ अपराजित, २६ कनकसैन, २७ सुगमसैन. २८ मघवान् जित, २९ क्रतुसैन, ३० भगवानूसैन, ३१ बिदुरथ, ३२ विक्रमसैन ने लाहौर को अपनी राजधानी बनाई। ३३ कुमुद सैन, ३४, वृजपाल ने पञ्जाब प्रान्त में वनपुर नामक नवीन गढ़ बनवाया। इन्होंने बङ्गाल प्रदेश के राजा हरिसिंह को संग्राम में पराजित किया था। ३५ वज्रजित्, उनके ८० पुत्र थे उनका पॉचवा कुमार ३६ मूर्तिपाल राज सिंहासन का अधिकारी हुआ। ३७ रूकमसैन, ३८ कनकसैन, ३९ उत्रासैन ने गजनी पर अधिकार जमाया। ४० शिवायत सैन, ४१ प्रतसैन ४२ शम सेन। ४३ सहदेव, ४४ देवसहाय, ४५ शङ्कर देव, ४६ सूर्य देव, ४७ प्रताप सैन, ४८ अवनीजित, ४९ भीमसैन जो संग्राम में यवनों से पराजित

होकर सतलज नदी के किनारे पर मारे गये। ५० चन्द्रसैन ५१ जगसवात, ५२ वैण ५३ देवजस। देवजस के पश्चात् जगस-वातके दूसरे पुत्र काकलदेव के प्रपौत्र ५४ मूलराज सिंहास-नासीन हुए। ५५ रायदेव, ५६-सतुराव, ५७ देवनन्द। राजा सतुराव भी पुत्रहीन थे इस से काकलदेव के वंश से (जो कि उस समय अवधास नामक नगर में राज्य करते थे) देव नन्द को सतुराव ने दत्तक पुत्र वनाकर अपने राज्यपर अभि-षिक्त किया था। ५८ जसभूप ५९ बुध, ६० रोहतास, ६१ प्रतसैन, ६२ महोतन, ६३ वासुदेव, ६४ अलभाण, ६५ वीर सैन ६६ सुभैव, ६७ सूरत सैन ६८ गुणपयोधि ६९ जगभाल। इनके भाई भारतसैन को उस के धाभाई सतोदान ने मार कर मथुरा का राज्य वथाने के राजा व्रजपाल को दिया। ७० भीम सैन ७१ तेजपाल, ७२ भूपत सैन ७३ रसानूप, ७४ चन्द्रसेन, ७५ भूतमन, ७६ लालमन, ७७ सारगदेव, ७८ देवरथ, ७९ जस-पत, ८० जगपत ८१ हंस पत। राजा हंस पत ने विक्रम संवत् २ में हिसार गढ में राजधानी स्थापित की। ८२ दिवाकर, ८३ भारमल, ८४ खुभाण ८५ अर्जुन सिंह, ८६ ब्रुजसैन, ८७ गजासिंह महाराज गजसिंह ने भी अपने पूर्व पुरूषो की राजधानी गजनी को अपने अधिकार मे किया परन्तु व उस पर सम्पूर्णतया आ-धिपत्य न जमा सके। यवनपति ने १ लक्ष यवन सैना के साथ उन का सामना किय, महाराज गजसिंह के पास उस समय तीस हजार ही यादवसैना थी। वे वीरता के साथ संग्राम भूमि में अपने प्रवल पराक्रम को दिखलाकर स्वर्गलोक को सिधारे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके भाई (काका) सहदेव ने कई महीने तक गजनी पर अपना आधिपत्य कायम रखा परन्तु यवनों के आक्रमण से वे भी तंग आकर वहीं पर कटमरे।

८८ शालिवाहन। महाराज गज सैन ने यवनों से आतंकित होकर कुमार शालिवाहन को कुलदेवी की आज्ञा से ज्वाला मुखी देवी के वहाने से प्रथम ही सकुटुम्ब पंजाव प्रान्त में भेजदिया था; वे अपने पिता तथा काके की मृत्यु का समाचार सुन कर अत्यन्त दुःखी हुए। उन्होंने शालिवाहनपुर (वर्तमान लाहौर) नाम के नवीन नगर को वसाया। महाराज शालिवाहन के १४ पुत्र उत्पन्न हुये। १ वालन्द, २ धर्म्मांगद, ३ श्रीवत्स, ४ कालक, ५ पार्व, ६ रूपा, ७ सुपेण, ८ लेख, ९ जसकर्ण, १० नेम, ११ भूमाट, १२ नेपक, १३ गङ्गेव, १४ जोगेव। इन सव ने अपने वाहुवल से पञ्जाव प्रान्त में पृथक् राज्य स्थापित किये थे, पटियाला, कपूर्थला, सरमोर, नाहन, महेसर आदि रियासतों के वर्तमान नरेश वालन्द के भाइयों के वंशज हैं। पटियाला नरेश यद्यपि शिख सम्प्रदायी है परन्तु जैसलमेर के अधीश्वर को अपना स्वजातीय ज्येष्ठ वन्धु समझ कर भाटी वंश के साथ अभी तक अपना भ्रातृभाव दिखलाते हैं। महाराज शालिवाहन ने युवा होते ही शत्रु पक्ष के नेता जलाल को मार कर अपने पूर्वजों की प्राचीन राजधानी गजनी को हस्तगत किया। युवराज वालवन्द (वालन्द) को गजनी का शासन भार प्रदान करके आप शालिवाहन पुर को लौट आये। शालिवाहन की मृत्युके अनन्तर ८९ वालवन्द शालिवाहन पुरको लौट आये। उन्होंने दिल्ली के राजा जयपाल की कन्या राजकुँवर के साथ विवाह किया। उनके १ भट्टी, २ भूपति ३ कुलूराव, ४ भंभ, ५ सहराव, ६ भड़सेच ७ मॅगरेव नाम के सात पुत्र हुये। महाराज वालन्द ने अपने द्वितीय पुत्र भूपति को गजनी का शासन भार अर्पण किया। वालन्द की विद्यमानता में ही म्लेच्छों का प्रभाव गजनी के चारों

तरफ बढने लगा। उन्होंने म्लेच्छ गण को समूलोन्मूल करने के लिये बहुत से प्रयत्न किये परन्तु वे कृतकार्य न हो सके। उस समय उनके पास एक भी प्रधान मन्त्री न रहा, जिस से समस्त राज्य की देखभाल भी उन्हें आपही करनी पडती थी। वालन्द का द्वितीय पुत्र जो अपने पिता की विद्यमानता में ही गजनी के शासक पद पर नियुक्त हुआ था, उसके चिकेता नामक पुत्र पैदा हुआ। चिकेता के १ देवसी, २ भैरू, ३ क्षेमकरण, ४ नाहर, ५ जयपाल, ६ धरसी, ७ विज्जल, ८ सारसमन्द नामके आठ पुत्र हुये। भूपति की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र चिकेता गजनी का अधीश्वर हुआ। उस समय म्लेच्छों का प्रभाव बहुत ही बढ़ा चढा था। दैवयोग से गजनी के समीपवर्त्ती वाह्लीक (बलख बुखारा) प्रदेश का उवजक वशी बादशाह मरगया। उसके एक परम स्वरूपवती कन्या के सिवाय और कोई भी सन्तान न थी। चिकेता ने अपनी म्लेच्छ प्रजा के अनुरोधसे तथा बलख प्रदेश के राज्य की प्राप्ति के लोभ से यवन मत को स्वीकार करके उस परम सुन्दरी उवजक वशकी कन्या के साथ विवाह भी कर लिया। इससे उस के राज्य का विस्तार बुखारे से भारत के पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त पर्य्यन्त हो गया। चिकेता अपने देवसी आदि आठों ही पुत्रों के सहित यवन मतानुयायी हो गया। इन चिकेता से ही चकत्ता या चगताई नामक मुगल जाति की उत्पत्ति हुई है।

बीजल के पुत्र गोरी ने बलख से ४० कोस की दूरी पर गोर नामक शहर बसाया था उसी की सन्तान गोरी नामसे विख्यात हुई। देशी इतिहास के इस कथन की सत्यता का प्रमाण मुसलमानों के इतिहास में भी पाया जाता है। मुसलमान

इतिहास वेत्ताओं का मत है कि चकेताओं के नेता तमून्वीन (चंगेज खां) जट या जूति जात्युत्पन्न प्रसिद्ध मूर्ति पूजक था। जट और जूति जाति यदुवंश सम्भूत हैं, और इसी से अफगान जाति उत्पन्न हुई है। इसके लिये हमारे पास यथेष्ट प्रमाण है। प्रथम तो अफगानों की जन्मभूमि यादवों की राजधानी गजनी है और दूसरी बात है कि अभीतक उनकी (अफगानों की) एक शाखा का नाम जादून है। काफिर स्थान की भिटानो आदि बहुत सी जातियें ऐसी हैं जिन्होने अभीतक भी यवन धर्मको स्वीकार नही किया है। वे अभी तक भारत और अफगानिस्थान की सीमान्त पहाड़ियों में स्वाधीनता पूर्वक निवास करती है। यद्यपि ब्राह्मणादर्शन से वे हिन्दू धर्म से च्युत हैं, तथापि उनके हिन्दू (यदु) सन्तान होने में कुछ भी सन्देह नहीं है। हिरायत और बुखारा पर्य्यन्त अत्यन्त प्राचीन काल से अभी तक भी हिन्दू धर्म्म प्रचारार्थ ब्राह्मण सिंधु तथा जैसलमेर से जाया करते हैं। सिन्ध प्रदेश के प्राचीन गढ़का नाम किराडू था।

उसपर यादवों (भाटियों) का बहुत वर्ष तक अधिकार रहा फिर वहां पर यवनों का आधिपत्य होने के कारण बहुत से यादव स्वदेश छोड़ कर इधर उधर भाग गये तथा शत्रुओं के भयसे क्षत्रियपने को छोडकर वैश्यजाति मे परिणत होगये। वह व्यवसायीवैश्य जाति इस समय सिंध प्रदेश के मुख्य नगरों (कराची, शिकारपुर, सक्खर, रोहडी आदि) में किराड नामसे प्रसिद्ध है। इस जाति के गुरु और धर्मोपदेशक वेही ब्रह्मण हैं जो भाटी वंशके हैं।

उपरोक्त प्रमाणों से यह निर्विवाद प्रमाणित किया जासकता है कि बलन्द के द्वितीय पुत्र भूपतिके पुत्र चिकेता की सन्तान

ने ही सबसे प्रथम राज्य के लोभ से यवन धर्म को स्वीकार किया था।

वालन्द के तीसरे पुत्र कालूरावके भी निम्न लिखित आठ पुत्र हुये। १ शिवदास, २ रामदास, ३ आस्सा, ४ किसतन, ५ समोद, ६ गँगू, ७ जस्सू, ८ भागू। इन सबने भी यवन धर्म को स्वीकार किया।

वालन्द के चौथे पुत्र झॅझने झंझलाकोट नाम सुदृढ़ दुर्ग बनवाया था। इसी झंझसे जूहिया जाति की उत्पत्ति हुई है। सन् १५१७ ईस्वी की १७ वी फर्वरीको बाबर ने सिंध प्रदेश पर आक्रमण किया था उस समय तक झॅझसे उत्पन्न हुई जूहिया जाति अपने अविकृत स्वरूप में विद्यमान थी। बाबर ने जाफर नामा (तैमूर का इतिहास) को पढकर यदुगिरि पहाड का अनुसंधान किया। यह यदुगिरि पहाड़ सिन्धु और सतलज नदी के बीच के बीहड़ नगर से सात कोस के अन्तर पर अवस्थित है।

बीहड़ नगर को सुबाहु के तृतीय पुत्र यदभान-न उस देश के राजा के मर जाने पर उस देशकी प्रजा के अनुरोधसे अपने अधिकार में किया था। इस बीहड़ प्रदेश तथा यदुगिरि पहाड पर यदुभान की संतान (यादव) तथा झॅझ वशोत्पन्न जूहिया जाति का चिरकाल तक अधिकार रहा, इनकी पदवी राय थी।

झॅझ की सन्तान ने भी यवन धर्म्म को स्वीकार कर लिया है परन्तु वह अभीतक अपने राजपूत वशोत्पन्न होनेका अभिमान नही छोडती। इस वंशके कई घर तणोट (जैसलमेर खैरपुर राज्य का सीमान्त दुर्ग) गढ़ के आस पास हैं वे नाम

मात्र के लिये मुसलमान हैं, उनकी गौ में वैसी ही श्रद्धा है जैसी कि एक सनातनी हिन्दूकी होनी चाहिये।

वालन्दके ज्येष्ठपुत्र श्री भट्टी जी की उत्पत्ति से प्रथम यह जाति यादव नाम से प्रसिद्ध थी परन्तु भट्टी जी के पश्चात् उन के तथा उनके भाइयों के वंशधर भी "भाटी" नाम से विख्यात हुये।

९० भाटी (भाट्टी जी) अपने पिता वालन्द की मृत्यु के पश्चात् पैतृक राज्यके अधिकारी हुये।

महाराज भाटी जी का शासन काल विक्रम सम्वत् ३३६ में प्रारम्भ होता है। उन्होंने अपने प्रचण्ड भुजदण्ड के दुर्दण्ड प्रतापसे एक ही साथ विपक्षी चौदह राजाओं को पराजित किया और उनकी समग्र सम्पत्ति अपने अधिकार में कर ली उन्होंने कनकपुर के बघेले राजा वीरभानुके राज्य पर तीस हजार अश्वारोही तथा असंख्य पदातियों के साथ आक्रमण करके उसको पूर्ण पराजित करदिया। इस भयंकर समरानल में वीर भानुकी ४० सहस्र सेना भूमिसात् होगई। उन्होंने समग्र प्रतिपक्षी राजाओं को जीतकर इतना अधिक द्रव्य एकत्रित कर लिया था कि जिसको चौबीस हजार खच्चर भी वडी कठिनाई से उठा सकते थे। उन्होंने मण्डोर के राजा भीमदेव पड़िहार की पुत्री हँसावती से विवाह किया, जिससे उनके १ भूपत, २ मसूरराव नामके दो पुत्र हुये।

भाटी जी के देवलोक पधारने पर उनके ज्येष्ठ पुत्र

भूपत ९१ राजसिंहासनारूढ हुये। परन्तु वे अपने पिता के समान पराक्रमी न थे। इनके राज्य काल में गजनी के अधिपति धुन्ध ने अपनी अगणित सेना के साथ लाहौर पर

चढाई की। भूपत भयभीत होकर सकुटुम्ब लाहौर की समीपवर्ती नदी के उसपार भाग गये। उनके कनिष्ठ भ्राता महीसुर रावने लखी जगल मे प्रवेश किया तथा वहां के समस्त भूमियों को अनायास ही अपने अधिकार में कर लिया। महीसुर रावके अभयराव और शारणराव नामके दो पुत्र उत्पन्न हुये। अभयरावने समस्त लखी जंगल मे अपना आधिपत्य विस्तारित किया। शारणराव अपने भतीजे से लड़कर अन्यस्थान पर चला गया। कालान्तर में शारणराव की सन्तति किसान (जाट) जाति में परिणत होकर कृषिकर्म करने लगी और अभयराव की सन्तान आभोरिया भाटी के नाम से प्रसिद्ध हुई।

भाटी जी के अकर्मण्य ज्येष्ठ पुत्र भूपत के भीम, झॉंझणसी ९१ अतेराव नामके पुत्र हुये। ९२ भीम ने गौड़ राजा माणकदे (श्रीनगर) की पुत्री से तथा ४ अन्य नरेशों की कन्याओं से विवाह किया। उनके सतोराव नामक पुत्र हुआ। ९३ सतोराव ने अपने पितामह (भूपत) के राज्य का पुनरुद्धार किया। कुलदेवी स्वांगियां जी की कृपा से उन्होंने गजनी तक अपनी धाक जमाई। शहर मुलतान जो कि यवनों के वारम्वार आक्रमण करनेके कारण शून्य होगया था उसको फिर आवाद किया। सतोरावके खेम कर्ण, फूलराव, भाणसी नामके तीन पुत्र उत्पन्न हुये। ९४ खेमकर्ण। खेमकर्ण के नरपत, माडण, जूहड़ नाम वाले पुत्र हुये।

९५ नरपत विक्रमाब्द ४९२ में राजगद्दी पर वैठे। उन्होंने दिल्लीपति तूंवर जाति के महाराज की कन्या के साथ विवाह किया। उनके गज्जू और वज्जू नामके दो पुत्र

हुये। पिताके स्वर्गवासके अनन्तर दोनों भाइयों ने राज्यके लिये आपस में भयंकर युद्ध किया। इस युद्ध में भारत के बहुत से राजा दो दलों में विभाजित होकर लड़नेको तैयार होगये। कई दिनों तक भयंकर युद्ध होता रहा। अन्तमें कुमार२९६ गज्जू अपने पैतृक चिन्ह मेघाडम्बर को लेकर बुखारा को चले गये। छोटे कुमार बज्जू ने पिता का समस्त राज्य हड़प लिया। महाराज गज्जू अपने लघु भ्राता (बज्जू) को परास्त करने के लिये बुखारा में बादशाह से सहायता प्राप्त करने के लिये गये थे। परन्तु वहां पर उन्होने अपनी उद्दण्डता से बादशाह को भी अप्रसन्न कर डाला। एक दिन उन्होंने सूअर को पकड़ कर यवनोंके बीच में ही उसे मार डाला; इससे बादशाह उन पर अत्यन्त अप्रसन्न हुआ।

अपने मित्रों द्वारा बादशाह की अप्रसन्नता की बात उनको तुरन्त मालुम होगई, इससे उन्होंने तत्काल ही एक सफेद सूअर को पकड़ा और उसे बादशाह के दर्बार में ले गये। वहाँ रुष्ट बादशाह से अपने कार्य की सिद्धि के लिये बहुत अनुनय विनय करके कहा कि यवनों की तरह हमे भी सूअर मारने की बलाक है, मैंने तो केवल भगवती की अर्चा के लिये ही इस जानवर को पकड़ाथा, इस विषय में आप और कुछ भी खयाल न करें।

बादशाहने उनकी समयोचित वचनों से अत्यन्त प्रसन्न होकर उनकी सहायता के लिये अपनी समस्त सेना दे डाली। इस सेना की सहायता से गज्जू ने अपने भाई बज्जू को परास्त करके अपना समस्त राज्य हस्तगत कर लिया। गज्जू ने अपने पैतृक स्वत्त्व को अपने हाथमें ले करके फिर शाही सेना की सहायता से गजनी पर भी अपना अधिकार जमालिया।

उसके इस कार्य से बुखारे का बादशाह उसपर बहुत बिगड़ा परन्तु गज्जू के आगे उस का कुछ भी वश न चला। गज्जु के ९७, लोमन राव तथा वज्जूके भँडू नामका पुत्र हुआ। बुखारे का बादशाह तो गज्जू पर पहिले ही क्रोधित हुआ बैठा था परन्तु भँडू (वजूका पुत्र) ने उसकी शाहजादी को बलात् हरण करके बुखाराधिपति की क्रोधाग्नि को और भी अधिक प्रज्वलित करदिया। भँडू की इस अपमान जनक कार्यवाहीसे खिमकर, बुखाराधिपति भाटीवंशसे प्रतिशोध लेनेकी इच्छासे ईरान और खुरासान की सम्मिलित सैना सहित लाहौर पर चढ़ आया। दोनों ओर से भयङ्कर संग्राम आरम्भ हो गया। अन्तमें पञ्जाब प्रान्त के मुख्य गढ़ यवनों के हाथ में चले गये। लोमन राव तथा उसके पितृव्य-पुत्र भँडू सकुटुम्ब इस युद्धमें काम आये।

लोमनराव का पुत्र कुमार ९८ रेणसी पितृपैतामहिक राज्य चिन्ह "मेघाडम्बर" तथा "आदि नारायण" की मूर्ति को लेकर जंगलों में भाग गया। यवनसैना पञ्जाब प्रान्त को पद दलित करके और वहां का राज्य पड़िहारों, टाकों वराहों आदि राजपूतों को देकर स्वदेश को लौट गई।

रेणसीके भोजसी नामका पुत्र हुआ। ९९ भोजसी अपने पैतृक राज्य का उद्धार न कर सके। उनके मङ्गलराव नाम का पुत्र हुआ। १०० मंगलराव भी जीवन भर मारे २ फिरे, परन्तु अन्तमें उन्होंने इस दुरवस्थामें भी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश पर "मुमण वाहण" नामक नवीन दुर्ग बनवाया।

विक्रम सम्वत् ५७६ के लगभग यवनों ने मङ्गलराव पर अचानक आक्रमण किया। वे दुष्ट यवनों के प्रबल वेग को

न सह सके। वे अपने ज्येष्ठपुत्र मंडलराव (मडमराव) को साथ लेकर और अन्य पाँच पुत्रों को श्रीधर नामक अपने विश्वास पात्र वनिये के पास छोड़ कर, भाग गये। यवनों ने उनका पीछा किया पर वे मरूभूमि के अगम्य, सिकतामय प्रदेशमें जा छिपे। यवनपति हताश होकर उनकी राज धानी (लाहौर) को लौट आया। वहाँ पर सतीदास नामक टाक (तक्षक) जातिके वनिये (राजपूत) ने (जिसके पूर्वज भाटी वंश से, सर्वस्वहीन होकर वैश्य जातिमें परिणित हो गये थे) बादशाहसे कहा कि मंगलराव के कितने ही पुत्र स्थानीय श्रीधर महाजनके घरमें गुप्तभावसे रहते हैं।

बादशाहने उसके कथनानुसार तुरन्त ही अपनी सैनाको सतीदास के साथ श्रीधरके घर पर धावा बोलनेका आदेश दे दिया। सतीदासने शाही सेनाकी सहायता से श्रीधरको पकड़ कर म्लेच्छ राजा के सम्मुख खड़ा किया। महाजन श्रीधर ने भयभीत होकर बादशाह से निवेदन किया कि मेरे मकानपर जो बालक रहते हैं वे किसान के पुत्र हैं। किसान मेरा ऋणी है। वह इस युद्धके समय भाग गया है; इससे मैंने उसके पुत्रों को अपने ऋणके बदलेमें दास बनालिया है। इस पर बादशाह ने कहा कि यदि ऐसाही है तो तुम मेरे सम्मुख किसान जातिकी कन्याओंके साथ इनका विवाह भी करदो। म्लेच्छराज की आज्ञा से श्रीधरने तुरन्तही खालणसी, मूढराज और शिवराज को जाट जातिके किसानों की कन्याओं से विवाह करदिया और फूल को नाई की कन्यासे तथा केवल का कुम्हार की कन्यासे विवाह करा दिया। इन पांचो की सन्तति अभीतक अपने पिताओं के नाम से क्रमशः जाट, नाई और कुम्हार जातिमें अभीतक विद्यमान है। १०१ मंडपराव ने युवा होते ही पुंवार राज्य की

सीमामें-हकड़ (सिन्धुनदी) के पश्चिमी किनारे के पासही "मरोट" मामक नवीन दुर्ग वनाया। उनको इस दीनावस्था में अमरकोटके सोढोंने, पूगलके पुंवारोंने, लोद्रपुरके लुद्रा जातिके पुंवारोंने, भटिण्डेके वराहों ने तथा जांधेके भुट्टा जातिके राजपूतोंने उनके साथ विशेष सहानुभूति दिखलाई। मण्डम-रावका विवाह धाट प्रदेशके अधिपति सोढा जातिके नरेशकी कन्यासे हुआ था। उनके (१०२) सूरसेन नामक पुत्र पैदा हुआ। वह सम्वत् ६६७ के लगभग मरोट दुर्ग पर अपने पिताके परलोक-वासके अनन्तर राजगद्दी पर बैठा। सूरसेन के पश्चात् सम्वत् ७०२ के लगभग उनके पुत्र(१०३)रघुराव राजसिंहासन पर विराजमान हुए। सम्वत् ७१२ में उनकी मृत्युके पश्चात् उनका पुत्र (१०४) मूलराज राजगद्दी पर विराजमान हुआ। उन्होंने द्रोणपुर (यह स्थान इस समय महाराज वीकानेर-के अधिकार में-कोलायत नामसे प्रसिद्ध है) के राव धारु की कन्या दहयाणी से विवाह किया और अपने संकीर्ण राज्य को भटनेर पर्यन्त विस्तारित किया। उन्होने अपने पूर्वज मंगलराव द्वारा दूर्वस्थामें (विपे) वनवाये गये मुमण वाहण मामक दुर्गको शत्रुओं से छीन कर अपने अधिकारमें किया। उनके उदैराव गंगेव, और घोटड नामके पुत्र हुये। सम्वत् ७३६ में (१०५) उदैराव राज्यसिंहासना-सीन हुआ। सम्वत् ७८६ में मझमराव (१०६) राजगद्दी पर विराज मान हुआ। उन्होंने थराद गढ़ के अधिपति वघेले राजपूत की कन्यासे तथा और दो राजाओं की कन्याओं से विवाह किया। उनके केहर, मूलराज जेगो आदि पुत्र उत्पन्न हुये। मूलराज के लउवा, चूहल, राजपाल आदि पुत्र उत्पन्न

हुये। राजपाल के गोगी, खगर, धूकड़ और कुलरिया नाम के पुत्र हुये। मूलराज ने अपनी कन्या का विवाह वराह जाति के यशोरथ नामी राजा के पुत्र जूना से किया। वराह जाति पहले राजपुत थी अब नष्ट भ्रष्ट होकर मुसलमान जाति में परिणित हो गई है।

मूलराज के समस्त पुत्रों के सन्ततिने राज्यलोभ से या कुसगति से मुसलमान धर्मको स्वीकार कर लिया है। चूहल, खगर धूकड़, कुलरिये और उभकेचा आदि सिन्ध प्रान्त के मुसलमान मूलराज के पुत्रों की सन्तति है। ये लोग आधे मुसलमान और आधे हिन्दू हैं। अभी तक नवरात्रि में ये देवी का पूजन करते हैं तथा ब्राह्मणों को मानते हैं।

१०७ केहर अमित साहसी तथा अत्यन्त बलवान थे। उन्होंने अपने भाई मूलराज की सहायता से अफगानिस्थान के सोवत प्रदेश के ५०० घोड़े प्रथम आक्रमण में ही अपहरण कर लिये। उन्होंने जालौरके असणसी नामक देवड़ा जाति के नरेशकी कन्या से विवाह किया, उसविवाह के उपलक्ष्यमें चारणों को ५०० घोड़े दिये। वे (केहर) सम्वत् ८०६ में पिताके स्वर्गवासी होने पर मरोट गढ में राज्यसिंहासन पर विराज मान हुये। उन्होंने अपने समीपवर्ती बहुत से छोटे २ राजाओंको अपने अधीन कर लिया। वे एक दिन शिकार से लौट रहे थे उसी समय चन्नाजातिके राजपूतों ने अचानक आक्रमण करके उनको मारदिया। केहरजी के निम्नलिखित सन्तानथी। १ तिराकुराव (तनुराव) २ उतैराव (उतैराव की सन्तति उतैराव भाटी नाम से अभी भी प्रसिद्ध है) ३ चनहड़ (चनहड के केलड़, भारु भोजा, शिवदास आदि पुत्र हुये) ४ साफरिया, ५ थहीम (अथहीम) ६ जाम। छुठे

कुमार के वंश मे भाटिया जाति की उत्पत्ति हुई। १०८ तिराड्डजी ने अपने पैतृक अधिकार को हस्तगत करतेही सम्वत् ८२७ में वर्त्तमान भावलपुर से २२ कोश की दूरी पर किरोहर नामक नवीन दुर्ग बनवाया तथा सम्वत् ८८७ मे अपने नाम पर तिणोट गढ़ नामक दुर्ग खैरपुर से २० कोस की दूरी पर बनवाया और उसमे तिणोटियां देवी का मन्दिर बनवाया। उस समय तिणोटगढ़ के आसपास की भूमि वराह जाति के राजपूतों के अधिकार में थी, इस लिये तिणोट गढ़ के निर्माण से उस जाति के राजपूत अत्यन्त असन्तुष्ट हुये। उन्होंने हुसेनशाह यवन के नेतृत्व में दूदी. खीची खोकर और मुगल जातिकी सम्मिलित दश हजार अश्वारोहि सेना के साथ तिराड्डराव पर आक्रमण किया। कई दिनों तक भयंकर संग्राम होता रहा। अन्तमें उन्होंने तिणोट गढ़के द्वार खोल दिये। उनकी तलवार के तीव्र आघातों से आहत होकर वराहगण सबसे प्रथम भागा और पीछे म्लेच्छगण भी पराजित होकर वहांसे चला गया।

विराड्डरावके (१०६) विजेराव, मुकुर, जयतुङ्ग, आलन और राखचा नामके पांच पुत्र उत्पन्न हुये। मुकुर के माहपा, और माहपाके महोला और दिकाउ नामके पुत्र हुये। दिकाऊ ने अपने नाम से एक तालाव खुदवाया था। इस दिकाऊ की सन्तान सुथार जाति में परिणित होगई। ये सब मुकुर सुथार के नाम से इस रियासत में प्रख्यात है। जयतुङ्ग के रतनसी और चाहड नामके दो पुत्र हुये। रतनसीने पुंवारोंकी प्राचीन राजधानी विक्रमपुरको अपने अधिकार में किया। चाहड़ के कोला और गिरिराज नामके पुत्र हुये। इन्होंने अपने २ नाम पर कोलासर और गिरिराजसर नामके नवीन

नगर बसाये; ये दोनों गाँव बीकानेर राज्यकी सीमाके पास अभी तक उन्ही की सन्तान के अधिकारमें हैं।

आलन के देवसी, थिरपाल भूणसी और देवीदास नाम के पुत्र हुये। इन सब की सन्तति उष्ट्र पालक जाति में (रेवारी) परिणित होगई। राखचा के राजपाल नामक पुत्र हुआ। राजपाल के गजहथ, कल्याण, धनराज और हेमराज आदि पुत्र हुए। इन सब की सन्तान ने किसी समय शत्रु (यवन) दल से आतङ्कित होकर जैनधर्म स्वीकार कर लिया; इस समय, यह जाति राखेचा नाम से जैन समाज में प्रसिद्ध है।

(१०६) विजैयराव ने वींझणोट नामक नवीन दुर्ग अपने नाम से बनवाया। उन्होंने भूटा राजपूत रावजूजे की कन्या से पाणिग्रहण किया। उनके देवराज, माणकराव, गाहढ आदि पुत्र हुये।

सम्वत् ८१३ के माघ मासकी त्रयोदशी पुष्य नक्षत्र में विझँणोट नामक दुर्ग की स्थापना की थी। उनके पिता तिराझ जी अत्यन्त वृद्ध होने के कारण अपनी विद्यमानता में ही सम्वत् ८७० में विजैरावको राज्य भार देकर तिणोटगढ़ में श्री लक्ष्मीनाथ जी की आराधनामें शेष जीवन व्यतीत करने लगे।

विजैराव ने राज्याधिकार प्राप्त कर तुरन्त ही अपने प्राचीन शत्रु वराह और लांगाहों के साथ युद्ध छेड़ दिया। इन्होंने स्वल्पकाल में ही समस्त शत्रुगण को परास्त करके उनकी स्थावर और जङ्गम सब सम्पत्ति पर अपना अधिकार कर लिया। ये अपने समय के अत्यन्त वीर और यशस्वी राजा थे। इन्होंने अपने प्रबल प्रताप से समस्त शत्रुओं को परास्त करके अपने विस्तृत राज्य में शान्ति स्थापित कर दी। इन्होंने अपनी

राजधानी में एक विशाल और मनोहर शिवालय बनवाया और एक विजड़ासर नामक अत्यन्त विस्तृत ह्रद भी बनवाया। इन के प्रबल प्रताप की स्मृति अभी तक इस प्रान्त की जनता में अच्छी प्रकार बनी हुई है।

इस देश के चारण भाट निम्न लिखित दोहों से भाटी राजपूतों को प्रसन्न करके समय समय पर समुचित पारितोषिक प्राप्त करते हैं:—

यह सह हाले पांखती भूप अनेडा भाल।
आयो धणी बँधावसी विजड़ासर री पाल॥
तै सू वैड़ो सूमरा लांभो विजैराव।
मॉगण ऊपर हाथड़ा वैरी ऊपर घाव॥

इनके बूता (भुट्टा) राव जुजै की कन्या से विक्रम सम्वत् ८९२ में (११०) देवराज नामक परम प्रतापी पुत्र हुआ।

युद्ध में परास्त हुये वराहों, झालों, पुंवारों और लंगाहों ने सम्मिलित होकर देवराज से बदला लेनेका नवीन उपाय सोचा। इन सब की सम्मति से भटिण्डाधिपति वराह जाति के नरेश ने विजैराव के पुत्र देवराज के साथ अपनी कन्याका विवाह करने के लिये नारियल भेजा।

भाट्टिराज विजैराव इस षड्यन्त्र से बिलकुल अनभिज्ञ थे अतः उन्होंने अत्यन्त प्रमोद के साथ केवल आठसौ सैनिक अपनी जाति के साथ लेकर कुमार देवराज के साथ वराह पति की राजधानी (भटिण्डे) को प्रस्थान कर दिया। वहां वे बडे आगत स्वागत के साथ लिये गये। वराहपति अमरा जी की कन्या हर कुवरी के साथ कुमार देवराज का विवाह संस्कार सानन्द समाप्त हुआ।

इस मंगलोत्सव के उपलक्ष्य में रात्रि के समय भट्टीराज विजैराव अपने सैनिकों सहित मदिरोन्मत्त होकर निर्भयता के साथ सोया हुआ था। इसी समय दुष्ट वराहोंने अपने प्राचीन शत्रुको समूलोन्मूलन करने का विचार किया। उन्होंने एक २ करके प्रत्येक भाटी वीर को यमसदन पहुँचा दिया और अन्तमें अपने चिर-शत्रु विजैराव पर आक्रमण कर के उन्हें भी मार डाला।

देवराज की सासू ने स्त्री स्वभाववश दयार्द्र होकर अपने जामाता (देवराज) को गुप्तरूपसे राइका जाति के नेग नामक पुरूपके साथ तेज चलने वाले ऊंट पर बैठा कर वहां से भगा दिया। शत्रुओं ने भाटी जाति को समूलोन्मूलन कर ने के लिये देवराज का पीछा किया। स्वामी भक्त राईकाने तेज चलती हुई सांढ़ से उतार कर भट्टी कुमार को वराहपति के पुरोहित दवायत जी के आश्राम में छोड़ दिया और आप अकेला ही उस सांढ़ को तेज गति से भगाने लगा। स्वल्प समय के पश्चात् शत्रु समूह उन का पीछा करता हुआ उसी स्थान पर आ पहुचा।

पुरोहित जी के क्षेत्रके समीप पहुँचते ही शत्रुगणके पागी (ऊंटोंके पैरको पहचानने वाले) ने अपने ऊंठको रोक कर वराह पति अमरा से कहा कि मालुम होता है कि शत्रु यहां पर ऊंठसे कूदकर कहीं छिप गया है क्योंकि इस से आगे ऊंठनी के पैर अपने ऊपर कम वजन होने के कारण जमीन पर स्पष्ट उभरे हुये नहीं दिखलाई देते हैं।

पागी के कहने पर सब लोग ऊंठोंसे उतर कर चारों तरफ देवराज को ढूंढ़ने लगे। प्रत्युत्पन्नमति देवायत ने कुमार को चारों तरफ से शत्रुओं से घिरा हुआ देख कर तुरन्त ही

उसके गले में यज्ञोपवीत डालदी। शत्रुओं ने कुल गुरूके घर को चारों तरफ से घेर कर देवायत जीसे पूछाकि हमारा शत्रु आपके घरमें है। देवायतजीने कहा कि, जिसको आप ढूंढ रहे हैं वह यहां पर नहीं है, यहां तो मैं अपने पांच पुत्रों के साथ रहताहूं।

ऐसा कह कर शीघ्र ही उनके सन्देह को निवारण करने के लिये कुमार देवराज के साथ अपने कनिष्ठ पुत्र रतनू को जिमादिया। इस प्रकार देवायतजीने अपने क्रिया कौशल से शरणागतकी (भट्टी कुमारकी) प्राण रक्षा की।

विपक्षी दलने छद्मचातुरी से विजयोन्मत्त होकर भट्टियों की राजधानी तिणोट गढ़ पर आक्रमण किया और वहां पर देवराज के वृद्ध पितामह तिराड्जी आक्रमण कारी शत्रुदलसे भयंकर युद्धकर के वीर गति को प्राप्त हुये। देवराज शत्रुके पंजेसे निकलकर देवायतजीकी संरक्षकता में रहकर प्रच्छन्नतया अपने मामा भुटा (वूता), धिप के पास चले गये। उन्होंने ननसाल में जाकर माता का दर्शन किया। मामाने देवराज को दीनावस्था में देख कर एक गॉव देने का विचार किया परन्तु वूताधिपति के इस अनुचित कार्य्य से उसके सामन्तगण अत्यन्त असन्तुष्ट हुये। एक दिन उन्होंने एकत्रित होकर अपने राजासे निवेदन किया कि यदि आपने भट्टी कुमार को अपने राज्य में जरा सा भी जमीन का टुकड़ा दे दिया तो भविष्य में आप के लिये अत्यन्त अमंगल होगा। अपने सामन्तों के दबावसे वूंताधिपति की मति भी पलट गई। कई दिनों के पश्चात् शत्रुगण के भयंकर षडयन्त्र से सर्वस्वहीन राजकुमार ने अपने मामा से अत्यन्तार्त स्वर से उनकी पूर्व-प्रतिज्ञा को स्मरण कराते हुये दीनतापूर्वक कहा;—

सुण जजा इक वीनती णवै न पछो लेह ,
का भुटां का भाटियां कोट अडावण देह।

इस प्रकार वहुत कुछ प्रवञ्चना करने पर वूताधिप्रति जुजराव ने कुमार देवराज को अपने राज्यके निकृष्ट भाग में जरासी जमीन प्रदान की। इसके अनन्तर सौभाग्यवश एक दिवस अकस्मात् देव राज को रत्ननाथ नाम योगीश्वर से साक्षात्कार हुआ। योगी राजने कुमार की हीनावस्था से दयार्द्रचित्त हो कर,उसे एक रासायनिक रस परि पूर्ण कलश प्रदान किया। उस रस की एक वूद स्पर्श होते ही लोह निर्मित वस्तु भी स्वर्णमय होजाती थी। देवराज ने इसी कलश के प्रभाव से भटनेर नामक दुर्ग वनवाया। यह दुर्ग इस समय बीकानेर राज्य के अधिकार में हनुमानगढ़ नाम से प्रख्यात है। जुज इस नवीन दुर्ग के निर्माण से अत्यन्त अप्रसन्न हुआ। उसने देवराज पर आक्रमण करने के लिये तुरन्त ही १०२ सामन्तों के साथ वहुत सी सैना भेजी। कुमार देवराज ने वूताधिपति के १०२ सामन्तो को मन्त्रणा के वहाने से नवीन दुर्ग में लेजा-कर एक २ करके मार डाला।

इस प्रकार कुमार देवराज आशान्वित होकर अपने पितृ-पैतामहिक राज्यको पुनः प्राप्त करने का प्रवल प्रयत्न करने लगे। उन्होंने वहुत कालसे छिन्न भिन्न हुये अपने सामन्त समुदायको पुन एकत्रित किया। स्वल्प कालमें ही उनके नेतृत्व में १०००० भाटी राजपूत एकत्रित होगये।

देवराजने वराहपति से वदला लेनेके लिये तुरन्त ही भटिण्डा पर भयंकर आक्रमण करने की तैयारी की। उन्होंने २०००० वीर भाटी और २५ तोपोंसे अचानक ही भटिण्डा पर धावा करके वराह जातिका समूलोच्छेदन करदिया। उनके प्रवल आक्रमण से आतङ्कित होकर वराह जातिके

उसके गले में यज्ञोपवीत डालदी। शत्रुओं ने कुल गुरुके घर को चारों तरफ से घेर कर देवायत जीसे पूछाकि हमारा शत्रु आपके घरमें है। देवायतजीने कहा कि जिसको आप ढूंढ रहे है वह यहां पर नहीं है यहां तो मैं अपने पांच पुत्रों के साथ रहताहूं।

ऐसा कह कर शीघ्र ही उनके सन्देह को निवारण करने के लिये कुमार देवराज के साथ अपने कनिष्ठ पुत्र रतनू को जिमादिया। इस प्रकार देवायतजीने अपने क्रिया कौशल से शरणागतकी (भट्टी कुमारकी) प्राण रक्षा की।

विपक्षी दलने छद्मचातुरी से विजयोन्मत्त होकर भट्टियों की राजधानी तिणोट गढ़ पर आक्रमण किया और वहां पर देवराज के वृद्ध पितामह तिराडूजी आक्रमण कारी शत्रुदलसे भयंकर युद्धकर के वीर गति को प्राप्त हुये। देवराज शत्रुके पंजेसे निकलकर देवायतजीकी संरक्षकता में रहकर प्रच्छन्न-तया अपने मामा भुटा (वूता) धिप के पास चले गये। उन्होंने ननसाल में जाकर माता का दर्शन किया। मामाने देवराज को दीनावस्था में देख कर एक गाँव देने का विचार किया परन्तु वृताधिपति के इस अनुचित कार्य्य से उसके सामन्तगण अत्यन्त असन्तुष्ट हुये। एक दिन उन्होंने एकत्रित होकर अपने राजासे निवेदन किया कि यदि आपने भट्टी कुमार को अपने राज्य में जरा सा भी जमीन का टुकड़ा दे दिया तो भविष्य में आप के लिये अत्यन्त अमंगल होगा। अपने सामन्तों के दबावसे वृताधिपति की मति भी पलट गई। कई दिनोंके पश्चात् शत्रुगण के भयंकर षड़यन्त्र से सर्वस्वही-न राजकुमार ने अपने मामा से अत्यन्तार्त स्वर से उनकी पूर्व-प्रतिज्ञा को स्मरण कराते हुये दीनतापूर्वक कहा;—

सुण जजा इक वीनती गवै न पछा लेह
का भुटां का भाटियां कोट अटावण देह।

इस प्रकार बहुत कुछ प्रवञ्चना करने पर बूताधिपति जुजराव ने कुमार देवराज को अपने राज्यके निकृष्ट भाग में जरासी जमीन प्रदान की। इसके अनन्तर सौभाग्यवश एक दिवस अकस्मात् देव राज को रत्ननाथ नाम योगीश्वर से साक्षात्कार हुआ। योगी राजने कुमार की हीनावस्था से दयार्द्रचित्त हो कर,उसे एक रासायनिक रस परि पूर्ण,कलश प्रदान किया। उस रस की एक बूंद स्पर्श होते ही लोह निर्मित वस्तु भी स्वर्णमय होजाती थी। देवराज ने इसी कलश के प्रभाव से भटनेर नामक दुर्ग बनवाया। यह दुर्ग इस समय बीकानेर राज्य के अधिकार में हनुमानगढ नाम से प्रख्यात है। जुज इस नवीन दुर्ग के निर्माण से अत्यन्त अप्रसन्न हुआ। उसने देवराज पर आक्रमण करने के लिये तुरन्त ही १०२ सामन्तों के साथ बहुत सी सैना भेजी। कुमार देवराज ने बूताधिपति के १०२ सामन्तों को मन्त्रणा के बहाने से नवीन दुर्ग में लेजाकर एक २ करके मार डाला।

इस प्रकार कुमार देवराज आशान्वित होकर अपने पितृ-पैतामहिक राज्यको पुनः प्राप्त करने का प्रबल प्रयत्न करने लगे। उन्होंने बहुत कालसे छिन्न भिन्न हुये अपने सामन्त समुदायको पुन एकत्रित किया। स्वल्प कालमें ही उनके नेतृत्व में १०००० भाटी राजपूत एकत्रित होगये।

देवराजने वराहपति से बदला लेनेके लिये तुरन्त ही भटिण्डा पर भयंकर आक्रमण करने की तैयारी की। उन्होंने १०००० वीर भाटी और २५ तोपोंसे अचानक ही भटिण्डा पर धावा करके वराह जातिका समूलोच्छेदन करदिया। उनके प्रबल आक्रमण से आतङ्कित होकर वराह जातिके

कायर राजपूत अन्य जाति में परिणित होगये और भटिण्डा प्रदेश वीर-विहीन होगया। विजयोन्मत्त भाटी सरदार नगर में घुसकर अनेक प्रकार के उपद्रव करने लगे। उनके असभ्या-चरण से प्रकुपित होकर देवराज के प्राण बचाने वाली वराह-पति की महारानी ने अपने जामाता से कहा —

ऐड़ी न कीजै अनीत, देवराज नुर वांक है।
जग रहसि वत नीति अनीत न कीजिये॥

सासू के दीन वचनों से द्रवीभूत होकर देवराजने तुरन्त ही उस नगर को अपने अधिकार में करलिया।

इसी समय योगी राज रत्ननाथ ज़ी काश्मीर से लौटकर देवराजके पास आये, वे अपने शिष्यको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। इसी सुअवसर में कुमार देवराजने राज्याभिषिक्त होकर महोपकारी योगीश्वर से "रावल सिद्धदेव राज" की पदवी प्राप्त की और उन्होंने योगीराज के हस्त कमल से राज्य तिलक लियाः-

सिद्ध वचन वर पायके सिद्ध भये देवराज।
रत्ननाथ हाथ तिलक किय, कह्यो भूप सिरताज॥

इन से पहले यादव वंशी महाराज राय उपाधि से विभू-षित थे परन्तु देवराजजी के पश्चात् इस वंशके नरेश रावल कहलाते हैं। महाराज देवराज ने अभिषिक्त होकर अपने पिता के राज्यका पुनरुद्धार किया।

उन्हों ने स्वल्प समय में ही अपने प्राचीन शत्रु लागाहों और पुंवारों को मार कर मारवाड़ प्रदेश के प्रसिद्ध नव दुर्गों पर अपना अधिकार कर लिया। इसी से वे नव गढ नरेश कहलाने लगे। महाराज देवराजने अपने प्राणरक्षक पुरोहित देवायनजी के कनिष्ठपुत्र रत्तनुको अपना पोल पाट नियत किया। परम प्रतापी महाराज देवराजने अपने नाम से

५२ बुर्जों से केशवल नामका नवीन दुर्ग बनवाया। उनके असह्य प्रताप को विपक्षीगण न सह सके। एक समय उनकी राजधानी (तिणोट) में रहने वाला जसकरण नामक सेठ व्यवसायके लिये धारा नगरी को गया। वहां पर धाराधिपति के दरबार में सिद्ध देवराजके राजसी ठाठकी प्रशंसा करने लगा। उसने प्रसंगवश धाराधिपति से कहा कि मेरे स्वामी देवराज के पास एक नामी श्वेत हाथी है। पुंवारपति देव राजसे पूंवारों की पृथ्वी हड़प जानेके कारण यों ही अप्रसन्न था। बनिये के मुख से अपने शत्रु की श्लाघा सुनकर उसने जस कर्ण के गले की हड्डी में अत्यन्त निर्दयता से वाली डाल कर उसे बुरी तरह से अपमानित किया।

जसकर्णने अत्याचारी पुँवार पति से किसी प्रकार छुटकारा पाकर अपने स्वामी देवराज से पूंवार पतिके असभ्यवर्ताव का वर्णन किया।

महाराज ने अपनी प्रिय प्रजा के प्रति अपमान जनक वर्ताव से अत्यन्त क्रुद्ध होकर तत्काल ही उसके सम्मुख शपथ करली कि जब तक मैं धारा नगरी को लूट कर पुंवारपति को समुचित दण्ड न दूं तब तक अन्न जल ग्रहण न करूँगा।

महाराज की भीषण प्रतिज्ञा से उनका समस्त सामन्त मण्डल उत्तेजित होकर धाराधिपतिको उसके अनुचित वर्ताव का प्रतिफल देने के लिये तैयार होगया। महाराज देवराज अपनी राजधानीसे १२५ कोशकी दूरी पर पहुंचे होंगे कि सूर्य्यास्त का समय होगया। उन के सामन्त मण्डल ने विचार किया कि धारा तो यहां से बहुत दूर है और महाराज अपनी प्रतिज्ञा के बहुत पक्के हे, अतः कोई ऐसा उपाय किया जाय जिससे महाराज अन्न जल ग्रहण करें।

ऐसा विचार कर उन्होंने महाराज देवराजसे निवेदन

किया कि इतनी दूरी पर बिना अन्न जल के पहुचना दुष्कर है अतः यहीं पर कृत्रिम धार बनाकर उसे लूटलेना चाहिये जिससे आपके अन्न जल ग्रहण करने पर अनुचर लोग भी अन्न जल ग्रहण करें। सामन्तों की सम्मति से महाराज ने यह बात स्वीकार करली और वहाँ पर तुरन्त ही कृत्रिम धार बनवाई गई।

महाराज की सैना में लगभग १४० के पुँवार राजपूत भी थे। उनसे इस प्रकार अपनी जन्म भूमिका अपमान न सहा गया। उन्होंने उत्तेजित होकर कहा ठीक है जहां पुँवार हैं वही धार है।

जहँ पुँवार तहँ धार है, जहां धार तह पुँवार।
धारक विनु पुँवार नहिं, नहिं पुँवार विन धार॥

ऐसा कह कर १४० वीर पुवार उस कृत्रिम धारकी रक्षाके लिये तैयार होगये।

पुँवार सेना अपने नेता तेजसिह और सारङ्ग की आधीनता में भयंकर युद्ध करने लगी इस युद्ध में १४० पुँवारोंने अपने जातीय अभिमानका अनोखा परिचय दिया। महारावल इस कृत्रिम धार की रक्षा में स्वर्गवासी हुये पुँवारों की अनाथ सन्ततिको समुचित वृत्ति प्रदान करके अन्नोदक ग्रहण किया।

धाराधिपति अजभानु कोधित देवराज के प्रवल आक्रमण को रोकने के लिये अपनी सेना के साथ पहले ही से तैयार था। यादवों की सेना के पहुँचते ही वहां पर तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया। स्वल्प ही समय में वीर देवराजने पुँवार-सैना को पराजित कर के धार को लूट लिया। विजयोन्मत्त देव राज ज्योंही अपनी राजधानी पहुँचा त्योंही लुद्र पुरके राजा जसभान के अत्याचारों से रुष्ट होकर उस का कुल पुरोहित विमला आचार्य्य (पुष्करणा ब्राह्मण) भी वहाँ पर

आ पहुँचा। उसने जस राज के अत्याचारों का वर्णन करके देवराज को लुद्रपुर पर अधिकार जमाने की सम्मति दी। देवराज अपने बारह सौ वीर सैनिकों के साथ विवाह के बहाने से लुद्रवा पाटण पर चढ आया। उसने लुद्रवा को चारों ओर से घेर कर अपने अधिकार में कर लिया और लुद्र पुरोहित को दुर्ग रक्षकके पदपर नियुक्त कर दिया। विमले की सन्तति आचार्य नामसे प्रख्यात है और इस समय जैसलमेर और बीकानेर के राज्य में रहती है। आचार्य जाति का दोनों ही रियासतों में अच्छा सन्मान है।

इस प्रकार स्वल्प ही समय में परम प्रतापी वीरवर देव-राजने शत्रु-अधिकृत अपने पैतृक राज्यका ही केवल उद्धार नहीं किया किन्तु समीपस्थ तथा दूरस्थ शत्रुओं की समस्त भूमि पर उन्होंने अपनी विजय पताका फहरा दी। उस समय भाटी राज के अधिकार में मारवाड़के नव अभेद्य दुर्गोंके अतिरिक्त जालौर, फिरोहर, मुमण वाहण और पारकर आदि बहुतसे छोटे मोटे दुर्ग भी हस्तगत होगये थे। निम्नलिखित छप्पयों से उनकी शासन शक्ति के विस्तार का परिचय सम्पूर्णतया हृदयावगत होसकता है:-

देवराज थप्पे दुरग लुद्रवां आप घर लाये।
संमवाहण त्रय सिन्धू जूनो पार कर जमाये।
भिड जालोरहु भजे मोरे नृप मण्डोर।
गढ अजमेरहु गंजे पूगल गढ लीधा प्रगट।
फतल चिठडे कीजिये.
देवराज चढते दिवसरतनू आज्ञा धर लीजिये ॥ १ ॥
क्रोड हजोरे अर्ब इक पैंसठ लाख पसाव,
दीधासिद्धदेवराजसी रीधे भाटी राव ॥
रीधे भाटी राव अर्ब इक रतनू अपै,

रीधे भाटी राव क्रोड़दे डागा थपै।
रीधे भाटी राव क्रोड दोय भाटों दीधी।
सात कड़ो इक साथ तिका पण विप्रों लीधी।
कोट एक दूजा कवि, कवित्त हम उच्चरै।
एता दान भाटी विना कौन भूप दूजो करे।

इन्हों ने अपने पितामह के नामसे तराडूसर, अपने पिताके नामसे विजड़ासर, अपनी महारानी के नामसे लछीसर और अपने नामसे देवराजसर नामक सेरावर निर्माण करवाये। ये सब सरोवर अभीतक इसी राज्य के अधिकारमें हैं। एक देवराजसर जो कि देरावल गढ़ के आस पास है वाहवल पुर राज्य के अन्तर्गत है।

एक दिन प्रतापी देवराज तिणोटगढ़के वाहर शिकार खेलनेक गये थे वहां पर छब्बीस वलोचों ने अचानक आक्रमण करके उनको मार डाला। वीर वर देवराज १३० वर्षकी अवस्था में इस नश्वर कलेवर को छोड विक्रम सम्वत् १०२२ में स्वर्गलोक पधारे।

महारावल देवराज के पड़िहार वंशी मण्डोराधिपति शलुक से पराजित होने का पक्का प्रमाण जोधपुर के प्रसिद्ध इतिहास वेत्ता माननीय मुन्सी देवीप्रसाद जी की कृपासे हालही उपलब्ध हुआ है। पडिहार वंशी राला वाउक ने मोर वंशी मयूर राजाको परास्त करने के उपलक्ष्य में एक कीर्त्ति स्तंभ वनवाकर उसपर विक्रम संवत् ८४० की चैत्रशुक्लापंचमी को एक शिला लेख खुदवाया था उसका सारांश इस प्रकार हैं:-

ॐ नमो विष्णवे।

यस्मिन् विशन्ती भूतानि यत सर्गस्थितीमते।
स वः पायाद्धृषी केशो निर्गुण सगुणश्चयः॥ १॥
गुणाः पूर्व पुरूषाणां कीर्त्यन्ते तेन पण्डितैः।

गुणकीर्ति स्तनश्यन्ती स्वर्ग धास करी यतः ॥ २ ॥
अतः श्री बाउको धीमान् स्व प्रतीहार वंशजां ।
प्रशस्ति लेखयामास श्रीयशो विक्रमान्विताम् ॥ ३ ॥
विप्रः श्रीहरि चन्द्राख्य पत्नी भद्रा च क्षत्रिया ।
ताभ्यन्तु ये सुता जाताः प्रतीहारांश्चतान् विदुः ॥ ५ ॥
बभूव रोहिलद्धांको वेद शास्त्रार्थ पारगः ।
द्विजः श्री हरिचन्द्राख्य प्रजापतिसमो गुरुः ॥ ६ ॥
नेन श्री हरिचन्द्रेण परिणीता द्विजात्मजा ।
द्वितीया क्षत्रिया भद्रा महाकुल गुणान्विता ॥ ७ ॥
प्रीतहारा द्विजा भूता ब्राह्मण्यां येऽभवन् सुताः ।
राज्ञी भद्रा च यान् सूते ते भूता मधुपायिनः ॥८॥
ततः श्री शिलुको जातः पुत्रो दुर्वार विक्रमः ।
येन सीमा कृता नित्या स्त्रवणी वल्ल देशयोः ॥ १८ ॥
भट्टिकं देव राजं यो वल्ल मण्डल पालकं ॥
न्यपातयत् क्षणं भूमौ प्रासवान् छत्र चिह्नकम्॥१९॥

शिला लेखमें कुल ३१ श्लोक हैं परन्तु हमारा प्रयोजन उप रोक्त श्लोकों से ही है। शिला लेखसे स्पष्ट विदित होता है कि पडिहार वंशकी उत्पत्ति हरिचन्द्र नामके ब्राह्मण से है। उस ब्राह्मण ने दो विवाह किये थे। एक ब्राह्मण कुलकी कन्यासे। और दूसरा महा कुलीन क्षत्रीय कुलकी भद्रा नामक कन्यासे ब्राह्मण कुल की कन्या से उत्पन्न हुई सन्तति पडिहार ब्राह्मण नामसे प्रसिद्ध हुई और भद्राके चार पुत्र हुए। वे चारों ही अपनी माता (भद्रा) के सम्बन्ध से सुरापेयी होने के कारण राज पूत कहलाये। हरिचन्द्रसे भद्रा सम्भूत भोग भट, कक्क, रज्जिल और दद नामक पुत्रोंने अपने पराक्रम से मण्डोरगढ नामक उत्तुङ्ग दुर्ग बनवाया। भोग भट का पुत्र नरभट और उसके नागभट नामक पुत्र हुआ।

उसने अपनी राजधानी मेडता में स्थापित की। इस नाग भटका प्रपौत्र(पर पोता) शिलुक था जिसने वल्ल मण्डलके अधिपति रावल देवराजको परास्त करके उससे राज छत्र छीन लिया। शिलुक का प्रपौत्र वाउक हुआ। उसने विक्रम संवत् ६४० में यह शिला लेख खुदवाया था। जैसलमेर के इतिहास में तो देवराज वाउकका समकालीन प्रमाणित होता है परन्तु तत्कालीन परिस्थिति पर सम्यकतया विचार करने पर उपरोक्त शिला लेख और इस इतिहास इन दोनो की ही सत्यता प्रमाणित हो सकती है। अनुमानतः यह मान लिया जाय कि विक्रम सवत् ८६९ में पडिहार शिलुक ने देव-राजको परास्त किया और ऐसा होना सम्भवभी है; क्योंकि इस समय अपने पिता विजैराजकी वृद्धा वस्था में उनकी विद्यमानता में ही शासन कार्य्य में निपुणता प्राप्त करने के लिये विशाल भाटी राज्य के तनोट के आस पासके वल्ल मण्डल नामक प्रदेश पर बालक देवराज नियुक्त हुएहों।अथवा अपने पिताकी मृत्युके पश्चात् उक्त प्रदेश पर ही उनका अधिकार रहगया हो। ऐसी अवस्था में वृद्ध शिलुकने अपने राज्यके समीपवर्ती बालक राजा देवराजको पराजित करके उनके राज चिह्न छीन लिये हों और इसके पश्चात् दो चार वर्ष के पश्चात् पूर्ण शक्ति संचय करके देवराजने संवत्९०० में शिलुक की मृत्यु अनन्तर नवाभिषिक्त उसके पुत्र झोटको मारकर प्राचीन आर्य्यों की मर्य्यादा के अनुसार उसके पुत्र भिल्लादित्यको पिता(झोट) के पद पर अभिषिक्त कियाहो। और दैवेच्छा से संवत् ९०२ के लगभग भिल्लादित्यकी आकस्मिक मृत्युसे उसका पुत्र कक्क मण्डोर का उत्तराधिकारी हो गया हो और विक्रम संवत् ९१९ के लगभग कक्की मृत्युके अनन्तर वाउक अपने पैतृक राज्यका उत्तराधिकारी हो गया हो। वाकुक ने युवावस्था में

ही (संवत् ६३२ के लग भग मयूरको मारकर क्षत्रियोचित सम्मान प्राप्ति के उपलक्ष्य में उक्त शिला लेख खुदवाया था। उस समय देवराज अवश्यमेव जीवित होंगे और उनका राज्य भी अति विस्तृत रहा होगा। शिलालेखमें देव राज्य का नामोल्लेख बाउकने इसी लिये किया है कि मैं उसी प्रसिद्ध पडिहार वंशकी सन्तान हूं कि जिसके प्रपितामह (शिलुक) ने (इस समय मारवाड के नव दुर्गों पर अपना एकाधिपत्य स्थापन करने वाले रावल देवराज को भी एक वार राज छत्र हीन कर दियाथा। प्रशंगवश अङ्गाङ्गी भावसे हरि चन्द्रकी ब्राह्मण सन्तान पडिहार के विषय में भी स्पष्ट निर्णय करना यहां पर परमावश्यक है।सिन्ध और मारवाड प्रदेशमें निवास करने वाली भारत विख्यात पुष्करणा जातिकी ८४ चौरासी शाखाओं में से वत्स गोत्री मुत्तर मुढर पडिहारा और लुद्र नाम चार शाखाएं सर्वतः प्रसिद्ध हैं। लुद्र पुष्करणा भाटियों की प्राचीन राज धानी (लुद्रवा पाटन जहाँ पर पहले पडिहार राजपूतोद्भव लुद्र वंशी राजाओंका राज्यथा) लुद्रवा के रहने वाले हैं और इस समय ये ब्राह्मण पुष्टिकर समाजमें कल्ला नामसे प्रसिद्ध है। इस शिलालेख के २७ सतावीसवें श्लोकसे यह विदित होता हो कि उस समय सिन्ध और मारवाडके भीतर पडिहार ब्राह्मणोंका भी राज्यथा। यह श्लोक इस प्रकार हैः–

दृष्ट्वा भग्नान् स्वपक्षान् द्विज नृप कुलजा न् सप्रतीहार भूपान्।
धिक् भूतैकेन तस्मिन् प्रकटितयशसा श्रीमता बाउकेन॥

इसका उत्तरार्ध अशुद्ध होनेसे नही लिखा गया। उक्त स-मग्र श्लोकका भावार्थ यह है कि जब संग्राम भूमि में अपने पक्षके ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों जातिके पडिहार राजा मयूरके प्रबल पराक्रमसे आतङ्कित होकर भाग गये तब अकेले बाउक ने भी

अतुल धैर्य्य के साथ संग्राम क्षेत्रमें अवस्थित होकर मयूर की समग्र सेनाको पराजित करके मयूरको भी यम पुर पहुंचा या। सिन्ध प्रदेश के अति प्राचीन इतिहास (चाचानमा) में भी लिखा है कि अति प्राचीन कालमें सिन्ध प्रदेश में ब्राह्मणोंका राज्य था। शिला लेखके सातवें श्लोकमें परिणीता महाकुला पदों से यह ठीक निर्धारित हो सकता है कि पण्डित हरिचन्द्र ने भद्रा से शास्त्रोक्त विधिसे विवाह किया था और भद्रा तत्कालीन प्रसिद्ध महा कुलीन राज वंशकी अति कमनीय बाला थी। मनु संहिता आदि आर्य्य धर्म शास्त्रों के आज्ञानुसार ब्राह्मण चारों वर्णोंकी कन्याओं से विवाह कर सकता है। अस्तु। इस विषय का स्पष्ट निर्णय पुष्टिकर इतिहास में होना चाहिये।

महारावल देवराज के पश्चात् उनके एक मात्र पुत्र महारावल जी १११ श्री मंधजी राजगद्दी पर विराजे। उन्होंने बारह दिन तक अशौच में रहकर पिता का द्वादशाह कर्म्म निर्विघ्न समाप्त किया।

तदनन्तर एक सौ आठ भिन्न २ प्रकार के वृक्ष, पल्लव मिश्रित ६८ कुओं के जल से उनको स्नान करवाई गई। उनके मस्तक से कुलीन, सौभाग्यवती सदाचारिणी स्त्री ने सुगन्धित-द्रव्यों को उतारा और उनके सम्मुख पंचामृत, सुवर्ण, चांदी मूंगा, मोती, राजछत्र, दूर्वा अनेक प्रकार के सुगन्धित-पुष्प, दर्पण, एक राजकुमारी कन्या, एक रथ, एक पताका, सात तरहके खरगोश, दो मछली, एक घोडा, एक बैल, एक बड़ा शंख, एक कमल, एक जलपात्र, एक चमर, वत्सतरी नारियल, हरितवर्ण मृत्तिका और नैवेद्य आदि पदार्थ रक्खे गये। और उन (श्रीमंधजी) को सप्त द्वीप के मानचित्रों से चित्रित तथा सुसज्जित व्याघ्रचर्म पर योगी वेश में बैठाया गया। उनके श-

रीर पर विभूति लगाई गई और श्वेत चमर ढुलने लगा। तदन्तर कुल-पुरोहित जी ने राज्य तिलक किया और पाट-व्यास जी ने आशीर्वादात्मक वेद मन्त्रों का उच्चारण किया तथा उपस्थित सामन्तगण उपहार देने लगे। इस प्रकार महारावल श्रीमंधजी ने शास्त्रों के विधान से राजसिंहासन को अलङ्कृत करके पितृहन्ता दुष्ट बलोचों को खोज २ कर मार डाला।

उन्हों ने अपनो प्रधानामात्य राव मालदे के पुत्र हमीरका, मल्ल पुरूषोत्तमदास की कन्या से विवाह करवाया। इसी मालदे की सन्तति रायरी महता के नाम से कालान्तर में माहेश्वरी जाति में सम्मिलित हुई।

महारावल श्रीमंधजीके पश्चात् उनका एक मात्र पुत्र महारावल वाछूजी राज्याधिकारी हुये।

महारावल मधजी के परलोक वास के अनन्तर सम्वत् १०३५ में उनके एक मात्र पुत्र वाछूजी राज्याधिकारी हुए। वे १०३५ विक्रमाब्द को श्रावण कृष्णा द्वादशी शनिवार को राजसिंहासन पर विराजमान हुए। उन्होंने छः राजकन्याओं से विवाह किया। उनके दूसाजी, सिंहराव, वापैराव, इसाघा और मूलपसी नामक पांच पुत्र हुए। उन्होंने सिन्धु नदी की पश्चिमीय नहरके किनारे पर मुंधकोट तथा शाहगढ़ से पांच कोश की दूरीपर वाछूटीकोट नामके नवीन दुर्ग वनवाये। मुंधकोट कई वर्ष तक भाटी राजा के अधिकार में रहा, परन्तु सिन्धप्रान्त पर अमीरों का अधिकार हो जाने से सिन्ध के अमीर ने इस कोट को अपने अधिकार में करलिया और इस समय यह " उधडका कोट" के नाम से पुकारा जाता है। इस कोट का रक्षक पुष्करणा जाति का व्यास था। उसने कोट को अमीरों के अधिकार में कई वर्ष तक न होने दिया, परन्तु भाटी राज्य की तरफ से समुचित सहायता के न आने से

वह कोट को छोड़ कर मेड़ते चलागया। इस कार्य्य से उसको इतनी घृणा हुई कि वह आजतक लुद्रवे नहीं आया। अभीतक उसकी सन्तान मेडते ही में रहती है। वाल्लूटी कोट समय के प्रभाव से विध्वस्त हो गया है। उसके निशान अवतक शाहगढ़ के पास विद्यमान् है। कुमार दुसाजी अत्यन्त साहासी था। उसने अपने कनिष्ठ भ्राताओं की सहायता से नगरथटे के गाजीखान नामक वलोच को मारकर उसके १४० घोड़े लूट लिए। उनमें से एक घोड़े की कीमत एक लक्ष मुद्रा थी। सिंहराव ने अपने नाम से सिंहराव नामक नगर बसाया। वह अभीतक सिन्ध प्रान्त के रोहड़ी नगर से, पांच कोश की दूरी पर सिंहसर नाम से पुकारा जाता है। सिंहराव के सच्चाराय और उसके वल्ला नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वल्ला के रत्ना और जग्गा (गजहथ) नाम साहसी पुत्र हुए। इन दोनों ने पडिहार जाति के मंडोर के राजा जगन्नाथ को पराजित कर उनके ५०० ऊँठ ले लिये। इनकी सन्तान सिंह-राव भाटी के नाम से प्रख्यात है। वपैराव के पाहुर और मादन नामक पुत्र हुए। पाहुर के सोढल और उसके वरमसी और तलपसी नामक पुत्र हुए। इन्होंने अपने वाहुवल से जोहिया राजपूतों के प्रदेश पर अधिकार कर लिया, और अपनी राजधानी पूगल को वनाई। पूगल प्रान्त में इन्होंने असख्य कूप खुदवाये। ये सव कूप अभीतक पूगल प्रान्त में पाहुके वेरे के नामसे पुकारे जाते हैं।

युवराज दूसाजी ने गङ्गास्नान के वहाने से अपने साथ बहुतसे भाटी वीर लेकर नागौर के खाट्र ग्रामके खींची जाति के यदुराय नामक असीम साहसी वीर राजपूत को उसके नवसौ अनुचरों के साथ स्वर्ग पहुचाया। यदुराय ने पूगल नगरी तक अपना सिक्का जमा रखाथा। वह दस्युवृत्तिसे अपना

जीवन निर्वाह करता था। दूसाजी ने उसको यम सदन पहुंचाकर व्यवसायी गणों को निर्भय करदिया। युवराज दूसाने अपने भ्राता को साथ लेकर गहिलोतों के अधीश्वर प्रतापसिंह की तीन कन्याओं से विवाह किया।

महारावल वाछूजी एक दिन अपने राज्य सिंहासन पर विराजमान थे। उस समय एक ब्राह्मण ने करीमखां नामक बलोच के खाडाल प्रदेश मे किये हुए अत्याचारों का उनके सामने वर्णन किया। ब्राह्मण भक्त महारावल ने तत्काल ही खाडाल देश में जाकर करीमखां को उसके ५०० अनुयायियों के साथ यमसदन को भेज दिया। वछूदजी के पश्चात् ११२ दूसाजी सम्वत् ११०० के आषाढ़ मास में यदुवंश के सिंहासन पर विराजमान हुए। दूसा जी के राज्य में अमर कोट के सोढा राना हमीर सिंह ने अपने अनुचरों के साथ लूट मचाना आरम्भ किया। दूसाजी ने प्रथम तो उसको अपने दूत द्वारा विनय पूर्वक कहलाया कि आपका और हमारा बहुत दिनों से मित्रता पूर्ण सम्बन्ध चला आता है। इस लिए आप को हमारे राज्य में उपद्रव मचाना उचित नहीं। परन्तु हमीर ने उनके वचनों की कुछ भी परवाह न की। इससे क्रोधित होकर दूसाजी अपने दल बल सहित धात प्रदेश पर चढ गये और अमर कोट पर आक्रमण कर हमीर को परास्त कर दिया। दूसाजी के जैसल, पवो और पहोड़ नामक तीन पुत्र हुए। उन्होंने वृद्धावस्था में मेवाड़ के महाराणा की कन्या के साथ विवाह किया। उनके सीसोदणीजी से वृद्धवास्था में विजयराव नामक यशस्वी पुत्र हुआ। कुमार विजयराव ने विवाह अनहड़वाडापतन के अधीश्वर सोलङ्की राजपूत सिद्धराज जयसिंह की कन्या के साथ किया। (जैन पण्डित रचित कुमार पाल चरित मे सिद्धराज जयसिंह का शासन काल ११५२ विक

माब्द से १२०१ तक लिखा है।) विवाह के समय कुमार विजय राव की श्वसूने उनके मस्तक पर तिलक करते समय कहा कि हे वत्स ! हमारे राज्य के उत्तर प्रदेश के नवीन राजा हमारी ज़मीन को हड़प रहे हैं, अतः उनसे आप हमारी रक्षा कीजिये। रानी के ऐसा कहने पर समागत राजाओं ने कुमार को " उत्तर भड किंवाड़ भाटी" अर्थात् (भट्टीवंश उत्तर से आनेवाले शत्रुओं से भारत की रक्षा करने वाला है,)की उपाधिसे विभूषित किया। अनहड़पाटण की सोलङ्किनी रानी से विजयराव के भोज देव नामक पुत्र हुआ। कुमार विजयराव का दूसरा विवाह धाराधिपति राय धवल पँवार की रामकुँवरि नामक कन्यासे हुआ। राय धवलके तीन कन्याएं थीं। उनमें-से एक का कुमार विजयराव के साथ, दूसरी का सिद्धराज सोलङ्की जयसिंहके के पुत्र जयपाल (विजयराव के साले) के साथ, तथा तीसरी का मेवाड़ेश्वर के कुमार के साथ विवाह हुआ। इस विवाहोत्सव के उपलक्ष में कुमार ने असंख्य द्रव्य खर्च किया, जिससे एकत्रित राजाओं ने कुमार को लाभा (रसिक) पद से विभूषित किया। इस दिनसे कुमार लाभा विजयराव के नाम से प्रख्यात हुआ। कुमार विजय राव के पँवार राज कन्यासे राहड नामक पुत्र हुआ। राहड़केनेतसी और केकसी नाम वाले दो पुत्र हुवे। दूसाजी ने सिसोदिनी जीके प्रेमपाश में आबद्ध होकर अन्त समय में कहा कि मेरा उत्तराधिकारी विजयराव बनाया जाय। इससे दूसाजी के परलोकवास के अनन्तर उनके कनिष्ठ कुमार ११४विजयराव हो राजसिंहासन के अधिकारी हुए। महारावल विजयराव पर दूसाजी के ज्येष्ठ पुत्र जेसल सामन्त मण्डल के इस अनुचित पक्षपात से अत्यन्त रुष्ट हुए, परन्तु विजयराव की विद्य-

मानता में वे किसी भी प्रकार का उनका अनिष्ट न कर सके। वे अपने भाग्यकी परिक्षा करनेके लिये नगरथट्टेके बादशाह शाहबुद्दीनकेपास जाकर रहने लगे।कुछ काल के अनन्तर विजयराव का लोकान्तर वास हो गया। तब उनके पुत्र ११५ भोज देव लुद्रवा पाटण के सिंहासन पर विराजमान हुए। भोजदेव अपने काके से आतङ्कित होकर सर्वदा ५०० सोलङ्की राजपूत वीरों की रक्षा में लुद्रवा में रहने लगे। नीति निपुण जेसल जी ने शाहबुद्दीन को सोलङ्कियों की राजधानी अनहड़ वाड़ा पर आक्रमण करने की अनुमति दी। शाहबुद्दीन ने ऐसा ही किया। अनहड़ वाड़ा के आक्रमण के समाचार सुनकर भोजदेव के ५०० अङ्ग रक्षक सोलङ्की राजपूत स्वदेश रक्षा के लिये शाहबुदीन से संग्राम करने के लिये चले गये। जेसल ने शाहबुद्दीन की बहुत सी यवन सेना तथा अपने प्रधान सहायक २०० भाटी वीरों के साथ लुद्रवा पर आक्रमण किया। निराश्रय भोजदेव ने "उत्तर भड किवाड़ भाटी" के गौरावन्वित पदके लिहाज से शाहबुद्दीन को पाटण प्रदेश पर आक्रमण करते समय आगे कई वार परास्त किया था। इस संयोग को पाकर क्रोधित शाहबुद्दीन ने अपने प्रधान सेनापति मजूजखान और करीम खां के गुप्त रूप से कह दिया था कि लुद्रवापाटण को लूट कर वहां का समस्त द्रव्य अपने साथ ले आना। महारावल भोजदेवने वीरता के साथ शाहबुद्दीन के सेनापतियों का सामना किया, परन्तु आत्मविद्रोह के कारण विजयी न हो सके। उन्होंने वहुत से यवनों को मारकर सात सो विश्वासपात्र भाटी वीरों के साथ झुंझार गति प्राप्त की। उनकी स्वर्गवास की स्मृति में निम्न लिखित सोरठा प्रसिद्ध है।

गोरी शाहबुद्दीन, भिड़िया रावल भोजदे।
नाम उमर रख लीन, बारह सौ नव लुद्रपुर॥

भट्टी वंश के प्रवल प्रतापी महारावल देवराजने पड़िहार जातिके समस्त लुद्र राजपूतोंको मारकर उनकी वारह दरवाजों से सुशोभित सुविस्तृत लुद्रवापाटण को अपने अधिकार में करलिया। संवत् १२०६ में यवन सेनाने उस सुरम्य नगर को भी विध्वस्त कर दिया। इस समय इस पुरातन नगर के समस्त अभ्रंलिह प्रासाद, भूतल में निम्न निमग्न होगए हैं. और वहाँ पर गड़रिये अपनी बकरियाँ चराया करते हैं। विजयी यवन सेना ने लुद्रपुर के समस्त वित्त को अपहरण करके ले जाने की इच्छा की पर जैसल ने अपना मनोरथ सिद्ध हुआ जानकर अवशिष्ट भट्टी वीरों की सहायता से मजूजखां को मारकर लूट का समस्त द्रव्य अपने हस्तगत कर लिया। वीर जैसल ने शत्रुदल को रोकने में लुद्रपुरको अनुपयुक्त समझ कर उसके आस पास नवीन दुर्ग वनवाने का विचार किया। एक दिन वे नवीन दुर्ग के निर्माणार्थ उपयुक्त भूमि को अन्वेषण करने के लिए लुद्रपुर के समीपवर्ती मैदान में घूम रहेथे। वहां पर उन्होंने एक सौ वीस वर्ष के वृद्धब्राह्मणको समाधि लगाए हुए देखा। वे थोडी देरतक उनके पास चुपचाप खड़े रहे। विप्रदेव ने समाधि खोली तो अपने सम्मुख हाथ जोड़े हुए तेजस्वी जैसल को देखकर उनका उचित सत्कार किया। जैसल ने अत्यन्त नम्रता से उस पूजनीय ब्राह्मण को साष्टांङ्ग प्रणाम करके अपने आने का कारण कह सुनाया। वह ब्राह्मण पुष्टिकर जात्यन्तर्गत आचार्य्य जाति का, लुद्रपुर के प्राचीन राजपूतों का कुल पुरोहित था। उसने जैसल को सर्व प्रकार से आश्वासन तथा अभय देकर उस भूभाग का समस्त प्राचीन इतिहास कह सुनाया। उसने कहा, "इस आश्रमका नाम ब्रह्मसर है। यहाँ पर प्राचीनकाल में काक नाम

ऋषि तपस्या करते थे। उन्होंने तपोबल से एक निर्मल जल का कुण्ड उत्पन्न किया। इस, आश्रम के समीप उस कुण्ड से निकल कर बहने वाली नदी का नाम भी काक है। एक समय द्वारिका से हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन यहां से पांच कोस दूर त्रिकूट नामक पर्वत पर विश्रामार्थ अल्प समय के लिये ठहर गए। प्रसङ्ग वश भगवान् कृष्ण चन्द्र ने अर्जुन से कहा कि किसी समय हमारे ही वशका मनुष्य यहां पर राजधानी स्थापित करेगा। अर्जु ने कहा कि यदि ऐसा हुआ तो फिर यहां के निवासियों को जलका तो बड़ा ही कष्ट होगा। यह सुनकर सर्व समर्थ हरिने, सुदर्शन चक्रके संघर्षण से वहां पर निर्मल जल का गम्भीर कूप उत्पन्न किया। उस कूप के पास एक पत्थर के उपर भविष्यवाणी खुदी हुई थी। सर्वज्ञ ब्राह्मण ने उस पर्वत पर जैसलको लेजा कर वह कूप और उसके पार्श्व भाग में एक पत्थर पर, खुदी हुई भविष्य वाणी भी पढ़कर सुनाई। खुदीहुई देव वाणी का आशय यह था:-

"किसी समय यदुवंश सम्भूत जैसल नामक नृपति यहां पर नवीन दुर्ग बनवाकर इस पर्वत के निम्न भाग में अपनी राजधानी स्थापित करेगा।" उस विप्रदेव का नाम ईशाल था। जैसल ने तुरन्त ही वहां पर दुर्ग बनवाना आरम्भ किया। उसने उस महात्मा की कृपा से अनुगृहीत होकर त्रिकूट पहाड के निम्न भाग से अर्ध क्रोश की दूरी पर अर्ध कोश परिमित विस्तृत क्षेत्र ईशाल नाम से प्रसिद्ध किया। यद्यपि इस मैदान में इस समय राजकीय रेजिडेन्ट साहब के विश्रामार्थ नवीन बङ्गले बनवाये गए हैं तथापि यहां के निवासी अभी तक भी इस मैदान को ईशाल के नामसे ही पुकार ते हैं। विक्रमाब्द १२१२ श्रावण शुक्ला द्वादशी को

११६ जैसल ने अपन नामसे त्रिकुटाचल दुर्ग के निम्न भाग में जैसलमेर नामक नगर की प्रतिष्ठा की। वहीं पर उन्होंने अपना राज्याभिषेक किया। उन्होंने पाहुडजाति के एक विद्वान् को प्रधान मन्त्री के पद पर नियुक्त किया। उन्हों ने नगर से एक कोश की दूरी पर जैसल सर नामक तालाव भी खुदवाया। उनकी वृद्धावस्था में भाटियों के चिरशत्रु चन्ना और वलोचों ने खूंडी के आस पास (खूंडी जैसलमेर से १२ कोश की दूरी पर है) लूटपीट मचाना आरम्भ किया। महारावल जैसलने वृद्धावस्था में भी स्वयं रणक्षेत्र में जाकर समस्त शत्रुओं को मार भगाया। महारावल जैसल के परलोक सिधार जाने के अनन्तर उनके ज्येष्ठ पुत्र केलणजी राज्य के उत्तराधिकारी हुए। परन्तु उस समय जैसल जी के प्रधान मन्त्री पाहु का किसी कारण केलण जी से वैमनस्य होगया। पाहु ने षड्यन्त्र रचकर केलण जी को राज्य भ्रष्ट कर दिया। इससे जैसल जी के कनिष्ठ पुत्र शालिवाहन ही सर्व सम्मति से राज्य गद्दी पर बैठाये गए। ११७ महारावल शालिवाहन के बीजल देव, वादर, हसराज, मोकल, चन्द्र, सातल नामक पुत्र उत्पन्न हुए। महारावल गज के पुत्र शालि वाहन के एक पुत्र ने बद्रीनाथ के पहाड़ों के आस पास एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया था उसके राजा बछूराज अपुत्रावस्था में देव लोक पधारे तव वहां के सामन्त मण्डल ने द्वितीय शालि वाहन से उस राज्य की रक्षा के लिये एक पुत्र प्रदान करने की प्रार्थना की। उनके अनुरोध से महा रावल द्वितीय शालिवाहन ने अपने तृतीय पुत्र हंसराज के पुत्र मनरूप को सामन्त मण्डल के साथ सकुटुम्ब भेजा। परन्तु दुर्भाग्य वश कुमार ने मार्ग में ही प्राण त्यागकर

दिया, और उसी दिन उसकी गर्भवती स्त्री ने अरण्य में ही पलाश वृक्ष के नीचे एक पुत्र रत्न उत्पन्न किया। उस पुत्र का पलाश के नीचे जन्म हुआ था, इसीलिये उसका नाम भी पलाश रखा गया और उसकी सन्तति पलाशिये भाटी नाम से प्रसिद्ध हुई। यह राज्य इस समय पंजाब के कांगड़ा प्रान्त में है। और रियासत सरमोर नाहन के नामसे प्रसिद्ध है। महारावल शालिवाहन के चन्द्र नामक पुत्र ने कपूरथला नामक राज्य स्थापित किया। उसकी सन्तान अभी तक उस राज्य पर अधिकार रखती है। मोकल के शूद्रास्त्री से उत्पन्न हुई सन्तान सुथहार जाति में परिणित होगई और उसकी सन्तति मोकल राजपूत कहलाती है और मोकल गांव में ही निवास करती है। सातल के मजल नाम पुत्र हुआ। उसकी सन्तति महजलार गांव में रहती है। महा रावल शालि वाहन ने काठी जाति के अधिपति जगभानु को मारकर उसका समस्त द्रव्य छीन लिया। यह काठी जाति अत्यन्त प्रबल थी। उसने आक्रमण कारी यूनान के शिकन्दर बादशाह के भी दांत खट्टे कर दिए। महारावल शालिवाहन को सिरोही के देवडा मानसिंह ने अपनी कन्या देने का प्रस्ताव किया। महारावल इस अवसर पर सिरोही गये। उनके ज्येष्ठ पुत्र बीजल देव पिता की अनुपस्थिति में अपने धा भाई की कुसम्मति से जैसलमेरके राज सिंहासन पर बैठ गया। शालि वाहन जब जैसलमेर लौट आये तब उसने प्रजा को अपने पक्ष में मिलाकर उनको कोरा जवाब दे दिया। शालिवाहन लाचार होकर अपने पूर्वजों की प्राचीन राजधानी देरावल में रहने लगे, परन्तु वहां पर वे अधिक जीवित न रहसके। उनके अधिकृत प्रदेश में (खाडाल) खिजर खां नामक बलोचने अपने ५०० सैनिकों के साथ आक्रमण किया। वीर शालिबाहन उस से भिड़कर अपने ३६

वीरों के साथ रण भूमि में काम आये। शालिवाहन जी की मृत्यु के पश्चात् उनका विश्वास घाती पुत्र बीजल देव भी अधिक समय तक राज सुखके आनन्द का उपभोग न करसका। एक दिन वार्तालाप में बीजल ने अपने धा भाई पर तलवार चलाई। तब उसने भी इसपर तलवार का वार किया। इस प्रकार वे दोनो ही आपस में कट मरे। बीजल के पश्चात् राज्य के उचित उत्तराधिकारी शालीवाहन के ज्येष्ठ भ्राता ११८ केलणजी ही सर्व सम्मति से राजगद्दी पर बैठाये गए। महारावल केलण वृद्धावस्था मे अर्थात् विक्रमाब्द १२४७ मे राज्य सिंहासन पर विराज मान हुए। उनके चाचक देव पाहून, जयचन्द, पीतमसी, पीतमचेह ओसरोड नाम के पुत्र पैदाहुए। इनमें दूसरे और तीसरे की सन्तान जेसर और सहीना राजपूत नाम से प्रसिद्ध है। महारावल केलण जी के राजत्व काल मे भी खिजर खाने ५००० अश्वारोही सेना के साथ खडाल देशपर आक्रमण किया। वृद्ध महारावल केलणने भी उसका सामना करने के लिये अपनी सातहजार यादव सेना एकत्रित की। अब की वार वीर यादवोंने ५०० वलोचो के साथ खिजर खांको भी यमालय भेजदिया। खिजर खांके मारे जाने पर अवशिष्ठ वलोच अपने समस्त द्रव्य को रणभूमि मे छोड़कर भाग गए। विजयी वीर केलण खिजर खां के लूट के समस्त द्रव्य को लेकर जैसलमेर आया। महारावल केलण जी वृद्धावस्था मे २८ वर्ष राज्य कर स्वर्गधाम पधार गए। केलण जी के प्राण त्याग करने पर इनके ज्येष्ठ पुत्र ११९ चाचकदेव सम्वत् १२७५ में राजगद्दी पर विराजमान् हुए। इनके राजत्व काल में सोढ़, चन्ना और वलोचो ने सम्मिलित होकर नगरथटा के मार्ग मे बुलाकी

दास नामक भाटिये का ५ लाख रुपये का माल लूट लिया। प्रजा प्रिय महारावलने अपेन असख्य वीर योद्धाओं के साथ संग्राम में पदार्पण किया। उधर से लुटेरे भी सम्मिलित होकर इन-का सामना करने के लिये आगे बढ़े। दोनों ओर से घमसान युद्ध हुआ। अन्त में महारावल ने १६०१ चन्नों और वलोचों को मारकर उनका समस्त द्रव्य अपने हस्तगत कर लिया। अवशिष्ट चन्ना और वलोच प्राणोंके भयसे रणक्षेत्रसे भाग गये। तब महारावल ने उनकी १४०० दूध देने वाली गौओं को आपने अधिकार में करके चन्नों और वलोचों के सहायक अमरकोट के सोढाराणा पर आक्रमण किया। १२०० सोढ़ा राजपूतों के मारे जाने पर अमरकोट के सोढाराणा ने महारा-वल की वश्यता स्वीकार करली। अमरकोटाधिपति राणा रोनसी ने अपनी परम सुन्दरी कन्या महारावल चाचक देवको अर्पण करके उनके साथ घनिष्ट सम्वन्ध स्थापित कर दिया। इस समय कान्य कुब्ज के राठोरों ने मरुभूमिके खेड प्रदेश को गोयल राजपूतों से छीनकर अपने अधिकार में करलिया था, और ये अपनी शासन शक्तिको अधिक विस्तृत करनेके लिये मरुभूमिमें चारों तरफ उपद्रव करने लगे। महारावल चाचक देव उनको दमन करनेके लिये राणा रोनसी की सेनाके साथ अपनी यादव सेना को सम्मिलित करके रण क्षेत्रमें उपस्थित हुए। उस समय राठोड़ों ने जशोल और वालोतरा प्रदेशपर अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित करलिया। यदुपति चाचक देवने वहां जाकर उनपर प्रवल आक्रमण किया। राठोड़ राव छाड़ा और उसका पुत्र टीडा उनके आक्र मणको न रोक सके। तव राव टीडाने अपनी कन्या महारावल चाचक देवको देकर उनकी क्रोधाग्नि को शान्त किया। महारावल चाचक देवने वीरताके साथ बत्तीस वर्ष पर्य्यन्त

राज्य किया। उनके तेजराव नामक पुत्र हुआ परन्तु वह बयालीस वर्ष की अवस्था में अपने पिताकी विद्यमानता में ही चेचक रोगसे मर गए। उनके जैतसी और करणसी नामके दो पुत्र उत्पन्न हुएथे। महारावल चाचक देव कनिष्ट कर्णसी पर अधिक प्रेम रखते थे। अतः उन्होंने अपने सामन्त मण्डल से कह दिया कि कर्णसी ही मेरा उत्तराधिकारी बनायाजाय।

विक्रमाब्द १२६६ में महारावल चाचक देव इस पार्थिव शरीरको छोड़कर स्वर्गवासी हुए। सामन्त मण्डली ने उनकी आज्ञानुसार कर्णसी को ही राज्य सिंहासन पर बैठाया। अपने कनिष्ठ भ्राता १२० कर्णसी को जैसलमेरके राज्य-सिंहासन पर सुशोभित हुए देखकर ज्येष्ठ जैतसी अपनी जन्म भूमिको छोड़कर गुजरात में जाकर वहांके अधीश्वर यवन राजकी आधीनता में रहने लगा। महारावल कर्णसी के राजत्व काल में मुजफ्फरखॉं नामक यवन ५०००अश्वारोहियों के साथ नागौर का शासन करता था। वह बहुतही अत्याचारी था। नागोर से १५ कोश की दूरीपर वराह जातिका भगोती प्रसाद नामक वीर राजपूत १५०० अश्वारोहियों के साथ उस प्रदेश पर शासन करता था। उनके एक परम सुन्दरी कन्या थी उसकी सुन्दरता पर मोहित होकरदुष्ट मुजफ्फरखांने वराह भगौती प्रसाद के पास उस राजपूतबाला से ववाह करनेके लिये एक दूत भेजा। विधर्मी को अपनी कन्या देनेमें वीर भगौती प्रसादने अपनी अनिच्छा प्रकट की। दुष्ट यवन दूतमुख से शुष्क उत्तर पाकर अपनी समस्त अश्वारोही सेना के साथ भगौती प्रसाद के प्रदेश पर चढ़ आया। वीर वराह पहिले से ही सावधान था। वह अपनी समस्त सम्पति और सेनाको लेकर जैसलमेर को भाग गया। परन्तु दुष्ट यवनने क्रोधित होकर तत्काल ही उसका पीछा किया। मुजफ्फर

कोससैन्य आयाहुआ देखकर वीर वराह मार्ग में ही लड़नेके लिये तय्यार हुआ। दोनों तरफ से भयङ्कर युद्ध हुआ, परन्तु यवन सेना अधिक थी, इससे वराह वीर परास्त होगया। भगौती प्रसादके १५०० वीरों में ४०० वीर कटकर जब धराशायी हुए तब वह अवशिष्ट सैन्य के साथ भागकर जैसलमेराधिपति महारावल कर्णसी के शरणागत हुआ। महारावल ने उसको आश्वासन देकर तुरन्त उस दुष्ट यवन को उचित प्रतिफल देनेका विचार किया। उन्होंने अपनी प्रबल सैना के साथ मुजफ्फपुर पर आक्रमण किया। उन्होंने तुरन्त ही तीन हजार अश्वारोहियों के साथ मुजफ्फरखां को मार कर वराहपति भगौती प्रसाद का समस्त द्रव्य लौटालिया, वराह पतिने भी प्रसन्न होकर विजयी महारावल को अपनी परम-सुन्दरी कन्या अर्पित कर दी।

कर्णसी के पश्चात् उनके निर्बोध पुत्र लखनसिंहजी विक्रमाब्द १३२७ में अपने पिताके उत्तराधिकारी हुये। उन्होंने अमरकोट के सोढा राणा देसल की कन्या सुगुणदेवी से विवाह किया। इनके पुण्यपाल और कल्याण नामक दो पुत्र हुये। (१२१) महारावल लखनसेन काकवुद्र विद्या के पूर्ण ज्ञाता थे, परन्तु वे बड़े ही सीधे सादे थे। महाराणी सोढी ने उनको अपने वश में कर लिया था। वे अत्यन्त कृपालु थे। उन्होंने एक दिन रात्रि के समय में गीदड़ों की चिल्लाहट सुनकर उपस्थित सभासदों से कहा कि मेरे राज्य में ये दुःखी होकर कौन रो रहे है। चतुर सभासदों ने उत्तर दिया कि विचारे गीदड़ शीतपीड़ित होकर चिल्ला रहे हैं। यह सुनकर कृपालु महारावलने आज्ञा दी कि प्रत्येक श्रृगाल को एक २ वस्त्र बनवादो। राजाज्ञा को शिरोधार्य कर सभासदों ने तुरन्त ही उनके लिये वस्त्र बनवाये; परन्तु कई एक दिनों के पश्चात्

महारावल को फिर उनकी चिल्लाहट सुनाई पड़ी। तव फिर उन्होंने सभासदों से पूछा कि "ये फिर क्यों रो रहे हैं, क्या अभीतक इनके लिये वस्त्र नहीं वनवाये गये हैं"। सभासदोंने सविनय निवेदन किया "महाराज वस्त्र तो वनवा दिये गये पर उन से उन का अच्छी तरह शीत त्राण नहीं होता। यह सुन कर महारावल ने आज्ञा दी कि "अच्छा इनके लिये जल्दी ही अच्छे मकान वनवाये जॉय"। आज्ञप्त सभासदों ने वैसाही किया। कालप्रभाव से छिन्न भिन्न हुए वे मकान अभीतक जैसलमेर के पश्चिमी द्वारके वाहिर " सियालियों के कोठे" के नाम से प्रसिद्ध हैं।

मकान वन जाने के पश्चात् भी अपने स्वभावानुसार शृगालगण शीतकाल की अर्द्धरात्रिमें एक दिन फिर चिल्लाता हुआ सुनाई दिया। महारावल जीने इस चिल्लाहटसे उत्तेजित होकर सभासदों को वुलाकर उनके रोने का कारण पूछा। उनके ऐसा पूछने पर सव सभासद थोड़े समय के लिये चुप-चाप वैठगये परन्तु उनमें से प्रत्युत्पन्नमति एक सभासदने कहा कि महाराज अव ये रो नहीं रहे हैं किन्तु महारावलजी की असीम कृपाके लिये उनको आशीर्वाद देरहे हैं। सभासदके इस प्रत्युत्तर से महारावलजी प्रसन्न हुए और समस्त सभासदोंने भी उस रात्रिके अवशिष्ट समयको सुख पूर्वक व्यतीत किया।

महारावलजी की सरलतासे अमरकोट की राज कन्या सोढीरानी ने अनुचित लाभ उठाना प्रारम्भ किया। उसने शनैः २ जैसलमेर राज्यके समस्त महत्वपूर्ण पदों पर सोढा राजपूतों को नियत कर दिया। उन सवने सम्मिलित होकर भाटीराज्य को हड़प जानेके विचारसे एक दिन रात्रिके समय सरलचित्त महारावल को मारदिया। आत्मीयगण द्वारा

अपने प्राणप्यार पतिके मारे जाने का समाचार सुन कर महारानी अत्यन्त क्रोधित हो उठी।

उसने समस्त भाटी सामन्तों को एकत्रित करके सोढोंकी करतूत कह सुनाई। भाटियों ने उत्तेजित होकर जैसलमेर में रहने वाले प्रत्येक सोढे को मार कर दुर्गके बाहर फेंक दिया।

लखन सेनके पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र (१२२) पुण्यपालजी राजगद्दी पर बैठे परन्तु वे अत्यन्त क्रोधी तथा राजनिति से अनभिज्ञ थे इससे विकसी और सीहड नामक सामन्तों ने उनको राजच्युत करके कर्णसी के ज्येष्ठ भ्राता और तेजरावके ज्येष्ठ पुत्र १२३ जेतसीजी को राजगद्दी पर बैठाया। राज्यच्युत महारावल पुण्य पाल जैसलमेर से कुछ दूर जाकर एक गाँव में अपने रहने के लिये उपयुक्त निवासस्थान ढूँढकर वहीं पर रहने लगे। उनके लाखनसी और लाखनसी के राणिङ्गदेव नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ। उसने खरल नामक राजपूत की सहायता से जोहियों से मेल करके मरोट और थोरी जातिके दस्यु नेताओं को मारकर उनसे पूगल प्रदेश छीन लिया। इस दस्यु दलके नेता ने भाटियों के पूगलगढ़ को अपने अधिकार में करके रावकी पदवी धारण की थी। वीर राणिङ्गदेवने उसको मारकर रावपदको ग्रहणकिया। उन्होंने अपने प्रवल प्रताप से मरोट, मुमण वाहण आदि भाटियों के पुरातन दुर्गों पर अपना आधिपत्य जमाया।

राव राणिङ्ग देवके सादा (सादूल) नामक पुत्र हुआ। यह अपने समय का परम तेजस्वी, साहसी और वीर पुरूप था। उस समय उसके प्रचण्ड दोर्दण्ड के प्रखर प्रताप सूर्य्य

से तिरोहित मरु भूमिके समस्त राजपूत प्रभात कालीन नक्षत्र मण के समान इधर उधर टिमटिमा रहे थे।

एक समय वीरवर सादा, दादलोत वंशी जैतुङ्ग सेठे, सोम लूणावत् वंशी राकसिये भंभवी, देदावत लखमसी तथा पाहू आदि प्रधान सहचरों के साथ आडेवले के अधिपति गगडकी १४० घोड़ियें छीनकर मोहल राजपूतों के अधिपति माणिक रावकी राजधानी उडिटके समीप से होकर स्वदेश (पूगल) को जारहे थे। माणिकराव ने उनके आगमन का समाचार सुनकर नगर से वाहिर पूगलके मार्ग पर खड़े होकर उन से एक दिनके लिये अपनी राजधानी में विश्राम करनेको प्रबल अनुरोध किया। वीर सादा, माणिक रावके आतिथ्य से सन्तुष्ट होकर वहां रहगये। उसदिन श्रावण की तीज का मेला था इससे नगर निवासिनी ललनायें आनन्द के साथ झूले झूल रही थीं।

माणिकराव के कोडमदे नामकी एक परम सुन्दरी कन्या थी। मोहिल राज ने कोडमदे का सम्बन्ध बहुत दिनों से चूडा जी के चतुर्थ पुत्र अर्डकमल से स्थिर कर रक्खा था। उस तीज के दिन कोडमदे अपनी सहेलियों के साथ राज प्रासाद के विशाल चत्त्वर में झूला झूल रही थी। वीर सादा भी दोलान्दोलन क्रीड़ा देखने को अपने अनुचरों के साथ घोड़े पर सवार होकर इधर उधर घूम रहा था। सादाने उस राजबाला को अपनी वीरता दिखाने के अभिप्रायसे तेज भागते हुये घोड़े से उछल कर समीपस्थ वट वृक्षकी लचीली शाखा को पकड़ ली और वह उससे लटक कर झूलने लगा। वह राजकन्या इस वीरके इस साहसिक कार्य्य से मोहित होगई।

रात्रि के समय माणिक रावके समक्ष सादे के विश्वास पात्र अनुचर पाहूने सादे की वीरता की अत्यन्त प्रशंसा की

और राजप्रासाद में बैठे हुये समस्त जन भाटी वीरके वीरत्व सूचक चरित्रों को सुन कर विस्मित और प्रसन्नचित्त हुये। राजकन्या कोडनदेने सादूलके अद्भुत चरित्रों को पहले भी सुन रक्खाथा परन्तु आज उस की वीरता के वर्णन को सुनकर तथा अपने सम्मुख ही उसे बैठा हुआ देखकर वह अपने हृदयके भावको प्रकाशित किये बिना न रह सकी। उसने अपनी सहेलियों से वार्त्तालाप करते हुये स्पष्ट कह दिया कि मैंने तो अपना मन पहले से ही भट्टी कुमारको दे रक्खाहै परन्तु आज उसके मुख चन्द्र को देखकर अपने मनोऽभिप्रायको तुमसे किसी प्रकार भी न छिपा सकी। अब तुम्हारा यह कर्तव्य है कि तुम मेरे मनोरथ को सफल करने में पूर्ण सहायता दो। सहेलियों से कोडमदे की इस कठोर प्रतिज्ञा को उसके माता पिता ने सुना। वे राठौर वीर चूडाकी अवज्ञा से अपने भावी सर्वनाश का अनुभव कर अत्यन्त विचलित हुये; परन्तु अपनी एक मात्र कन्या के स्नेह से विवश होकर उन्होंने उसी समय सादूल से समस्त वृत्तान्त प्रकट किया। यह सुनकर वीर सादूल ने कहा कि इसमें डर की कोई बात नहीं। आप राजपूत प्रथाके अनुसार पूगलको नरियल भेजिये, मैं आपकी कन्या के साथ विवाह करने को तैयार हूं। यह कह कर सादूल अपने सहचरों के साथ पूगल को चलागया।

मोहिलराज माणिक रावने तुरन्त ही नारियल भेजदिया। वीर सादूल अपने सातसौ अनुयायियों के साथ आरिड नगर को आगया। थोडेही दिनों में विवाह कार्य्य सम्पन्न होगया। माणिक रावने सुवर्ण, रथ, घोड़े और बहुत सी दासियें आदि दहेज में प्रदान की।

अर्डकमल्ल इस अनुचित विवाह वृत्तान्त को सुनकर आगबबूला हो गया। वह सादूल को दमन करने के लिये

चार हजार सेना को सजा कर पुँवार जातिके विख्यातवीर सांकला और भोजराज भगौतीदास चौहान आदि सादूल के प्रतिपक्षी दल को सम्मिलित करके मार्ग में आ डटा। यह सांकला राजपूताना के विख्यात वीर हडवूजीका पुत्र था। इसके मेहराज नामक एक वीर पुत्र था। जिसको सादूलने युद्ध भूमिमें इस विवाह से पहले ही मार दिया था। सांकला ने पुत्र शोक से उन्मत्त होकर भाटी कुमार से वदला लेने के लिये वहुत युद्ध किये परन्तु दुर्भाग्यवश वह सादूल को कभी भी परास्त न कर सका। इस समय उसने अपने हृदय के सन्ताप को शान्त करने का अच्छा अवसर समझा।

मोहिलराजने अर्डकमल्ल राठौड की चढाई का सब वृत्तान्त कहकर सादूल को अपनी चार सहस्र सुसज्जित सेना सपर्पित की पर निडर सादूल ने सैना ले जाना अस्वीकार किया। उसके सात सौ वीर भाटी शत्रुरतन सैनाके नामसे विख्यात थे और उनपर सादूल का पूर्ण विश्वास था। वीर सादूल ने नव परणीता वधूको साथ लेकर पूगल को प्रस्थान किया। तव मोहल राज का साला मेघराज पचास सैनिकों के साथ उसके साथ हो लिया।

सादूल चजन नामक स्थान पर पहुँचकर विश्राम कर रहा था कि इतने में ही अपमानित राठौड़ वीर सैना समेत आ पहुँचा। दोनों तरफसे घमासान युद्ध आरम्भ होगया।

सादूल के प्रधान सहायक सोमने सैनापति के पदको स्वीकार करके युद्ध करना आरम्भ किया। सादूल कोडमदे से अन्तिम विदा लेनेके लिये शिविर में गया; पीछे से सोमने प्रथम आक्रमणमें ही ३८७ राठौर वीरों को धराशायी करदिया।

उधर जहां पर सादूल और कोडमदे परस्पर वार्त्तालाप करही रहे थे कि शत्रुपक्षी जेटी मूणोत नामक वीरने उनके निवासस्थान पर आक्रमण किया। वीर सादूलने कोडमदेके सम्मुख ही उसको यमसदन भेजदिया। अब तो परस्पर भयंकर युद्धहोने लगा सादूलने मयूरके समान नाचने वाले एक सुन्दर घोड़े पर आरूढ होकर अल्प समय में ही ५०० राठौड़ वीरोंको धराशायी कर दिया। उस समय उसके प्रबल वेग को कोई नहीं रोक सकता था। वीर सादूल उस शीघ्रगामी अश्वपर आरूढ़ होकर शत्रु सेनाको सुलाता हुआ इस पार से उस पार तक चला जाता परन्तु उस अश्वका एक अद्भुत गुण संग्राम में बाधा देने वाला था। वह गुण यह था कि वह मटकी काढोल वजाने पर मयूर के समान नृत्यकरने लगता था। उस समय पूगल को जाते हुये एक ढोलीने शत्रु दल के एक मनुष्य को इस घोड़े का समग्र वृत्तान्त कह सुनाया, तब प्रतिपक्षी ढोलीने ऐसा ही ढोल बजाना आरम्भ किया। वस फिर क्या था सादूलका घोड़ा मयूरकी तरह शनैः २ नृत्य करने लगा। तब सादूल घोडे से कूद कर पैदल ही लड़ने लगा। उसको पैदल देखकर शत्रुपक्षके सैनिक भी पैदलही हो लिये और दोनों तरफ से द्वन्द्व युद्ध आरम्भ हो गया। सबसे पहले पाहू वंशी जयतुङ्ग भाटीने अपने हाथमें तीक्ष्ण तलवार लेकर वीरवर जोधा चौहानका सामना किया। अर्डकमल्ल और सादूल दोनोंही अपनी २ सेनाके आगे खड़े होकर इस अद्भुत युद्धको देखने लगे। वीर जयतुङ्ग प्रबल वेग से जोधापर टूट पड़ा, वह उसके आक्रमण को न सहकर पृथ्वी पर गिरपड़ा। जयतुङ्गकी तलवार की तीक्ष्ण धारने चौहान के शिरको धड से अलगकर दिया। अबतो विजयोन्मत्त जयतुङ्ग शत्रुदलमें घुस गया। उस समय उसने जिसको सामने पाया उसीको मार डाला। इससे

द्वन्द्व युद्धका क्रम टूटगया, परन्तु अर्डकमल्ल और सादूलकी परस्पर द्वन्द्व युद्ध करने की प्रवल अभिलाषा थी इस से उन्हों ने अपनी समस्त सैना को रोक कर द्वन्द्व युद्ध करना आरम्भ किया।

परम सुन्दरी मोहिल राज कुमारी कोडमदे रणस्थलसे कुछ दूर रथ पर बैठी हुई इस युद्धको देखरही थी। दोनों वीर हाथ मे तलवारे लेकर आ भिडे। अल्पही समयमें वीर सादूल ने शत्रुके मस्तक पर अपनी तीखी तलवार का प्रहार किया। रणवीर अर्डकमल्ल ने चतुरता से उससे वचकर सादूलके मस्तक पर वार किया, उससे सादूल पृथ्वी पर गिरकर मर गया। परन्तु सादूल के प्रवल आघातो से मूर्च्छित होकर अर्ड-कमल्ल भी उसीके साथ ही जमीन पर गिर पडा।

भट्टी कुमार के प्राण पखेरू तो क्षण भरमे ही उडगये परन्तु अर्डकमल्ल ने भट्टी कुमार की तीक्ष्ण तलवार की धार से जर्जरित होकर सादूल की षणमासी (छमासी) पर स्वर्गवास किया। इस युद्धमें अर्डकमल्ल के कई एक प्रिय भ्राता और प्रधान सहायक २२०० राठोडों के साथ काम आये।

अपने प्रिय पति को स्वर्गवासी होते हुये देख कर पतिव्रता कोडमदेने सती होने की तैयारी की। उसने अपने एक हाथ में तलवार लेकर दूसरे हाथ को काट डाला और अपनी बाँह श्वसुर को देने के लिये एक सैनिक को देकर गम्भीर स्वरसे उस सैनिक से कहा कि मेरी यह भुजा मेरे पूजनीय वृद्ध श्वसुर को दिखलाकर उनसे कहना कि तुम्हारी पुत्रवधू इस प्रकार की थी। तदनन्तर उस वीर वालाने अपने दूसरे हाथको फैलाकर समीपस्थ सैनिक से कहा कि मेरे इस हाथ को तुम अपनी तीक्ष्ण तलवार से काट डालो। सैनिक ने तुरन्त ही महारानी की इस कठोर आज्ञाका पालन किया। माहरानी

अपने परम प्रिय मृतक पति के शरीर को लेकर चितारूढ़ होगई। उसने अपनी दूसरी बाँहको मोहिल कुलके भाट कविको प्रदान करनेका आदेश दे कर सबके देखतेही देखते इसन श्वर शरीर को अपने प्राणाधार के शव के साथ भस्मसात् कर दिया।

पूगलगढ के वृद्धराव राणिङ्गदेव इस हृदय विदारक समाचारको सुन, अत्यन्त दुःखी हुये। उन्होने प्रिय-पुत्रवधूकी भुजाको भस्मकर के उसी स्थानमें उसकी स्मृति के उपलक्ष्य में एक मनोहर सरोवर निर्माण करवाया। यद्यपि वह प्रसिद्ध और पुरातन ह्रद इस समय बीकानेर महाराज की अधिकार में है तथापि अभी तक मोहिलेश्वरकी वीर कन्याके नाम को अमर कर रहा है।

वीर सांकल मेहराज की सहायता से ही राठौड़ वीरों ने इस भयङ्कर युद्धमें विजय प्राप्त की थी। इस लिये पुत्र-शोक-सन्तप्त वृद्ध राणिङ्गदेव नें उसी समय अपने सैन्य समूह सहित सांकल की राजधानी पर आक्रमण किया। रोषोन्मत्त भट्टी वीरों ने मरूभूमिके अजेय योद्धे प्रचण्ड प्रताप शाली वीर सांकल मेहराज को मारके उसके शिरको वृद्ध राणिङ्ग देवके चरणों मे समर्पित किया। वृद्ध राणिङ्गदेवने शत्रु नगर की समस्त सम्पति को लूटकर स्वदेशको प्रस्थान किया। उन्होने लौटते हुये राठौड़ राज चूडा के बहुतसे अधिकृत प्रदेशों को भी लूट कर अपने अधिकार मे कर लिया।

वीर चूडाजी के दो पुत्र खेतसी और अर्डकमल्ल सादूल के शस्त्र प्रहार से आहत होकर,—एकतो (खेतसी) संग्राम भूमिमें ही और दूसरा अर्डक मल्ल उसके छ मास के पश्चात्—मारे गये। इससे चूड़ाजी योंही क्रोधाकुल थे परन्तु जब उन्हों ने अपने परम सहायक सांकलकी मृत्यु और राणिङ्ग देवके राठौड़ प्रदेशों पर अत्याचार करने के समाचार सुने तब वे

अत्यन्त ही रोषोन्मत्त हो गये। उन्होंने उसी समय अपनी समस्त सेना को एकत्रित करके राणिङ्गदेवको परास्त करने का विचार किया। विजयी राणिङ्गदेव अपनी सीमा में प्रविष्ट होगये थे। वे निडर हो कर अपने थोड़े से साथियों के साथ मीरड़ा नामके गाँव (यह गाँव जैसलमेर और बीकानेर की सीमापर है और इस समय भी इसी नाम से पुकारा जाता है) पर शिकारसे लौट कर विश्राम कर रहे थे। उनकी समस्त सेना तितर बितर होगई थी। ऐसे समय में चूड़ाजी ने मीरड़ा की तलाई पर विश्राम करते हुये भाटी वीर राणिङ्गदेव को उनके समस्त अनुचरों के साथ मार डाला।

राव राणिङ्गदेवके सादूल (सादे) के सिवाय तनु और मेरू नामके और भी दो पुत्र थे। वे वृद्ध पिताकी मृत्यु का समाचार सुन कर चूड़ाजी को मारनेका उपाय करने लगे। इस समय वीर सादूल और उसके अनन्तर राव राणिङ्ग देव के मरने से उनकी शक्ति बिलकुल क्षीण हो गई थी। यद्यपि वे अत्यन्त अल्प वयस्क थे तथापि अपने पिता का बदला लेनेके लिये वे प्रत्येक प्रकार का उपाय सोचने लगे। बहुत कुछ सोचने पर भी जब वे अपने पितृहन्ता को प्रतिफल देने में कृतकार्य न हुये तब उन्होंने मुलतान के सेनानायक खिजर खां की शरण ली। यवन सेना के अधिपति (खिजरखां) ने आश्रयाभिलाषी वीर राणिङ्ग देवके पुत्र महा कुलीन भाटी राज कुमारों को सहायता प्रदान करने में अपना अहोभाग्य समझ तुरन्त ही अपनी सुसज्जित एक हजार घुड़सवार सेना प्रदान की। वे इस सेना को लेकर मण्डोर पर आक्रमण करनेको जा ही रहे थे कि अकस्मात् जैसलमेर के तत्कालीन राव केहर के तृतीय पुत्र केलण के साथ उनका साक्षात्कार हुआ। उन्होंने केलणके आगे चूडाजी से अपने पिताका बदला लेने का समस्त वृत्तान्त

कह सुनाया। देश कालज्ञ केलणजी ने शत्रु के बलाबल की परीक्षा करके उन दोनों भ्राताओं को राठौड़ चूडाजी को मारने के लिये एक गुप्त उपाय सुझाया।

उस ने तनु और मेरू के अधीनस्थ समस्त सेना को अपने अधिकार में करके अपनी एक कन्या चूडाजी को प्रदान करने का प्रस्ताव किया। परन्तु चूडाजी ने भाटी प्रदेश में जाने से अपना अनिष्ट समझ कर उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इस पर केलण ने कहला भेजा कि यदि आपको इस विषय में किसी भी प्रकार का सन्देह हो तो मैं अपनी कन्याको आप के नवाधिकृत नागौर नगर में भेज सकता हूं। चूड़ाजी ने निस्सन्देह हो कर इस प्रस्ताव को स्वीकार करलिया। केलण जी ने मुलतानपति की एक सहस्र सेना के साथ अपने चुने हुये भाटी वीरों के साथ चूडाजी से वदला लेने का दृढ़ विचार कर लिया। उन्हों ने पचास सुसज्जित शकट और सातसौ ऊंठ जैसलमेर से नागौर की तरफ रवाना किये। उन शकटों में रक्त पिपासू पूगल के वीर भाटी स्त्री वेष में छिपे हुये थे और एक सहस्र सातसौ भाटी वीर, एक सहस्र घुड़सवार सैनिकों के खानेकी सामग्री अपने साथ लिये हुये सात सौ ऊंटो पर चढ़े हुये थे।

राठौड़ राज चूड़ा यदुवंश रावल केहर के तृतीय पुत्र की कन्या से घर वैठे विवाह हो जाने की अभिलाषा से परम गौरवान्वित हो कर नागौर के वाहिर आयेहुए शकटों के पास पहुंचा। परन्तु ज्योंही उन्होंने सुसज्जित सेना से रक्षित शकटों को देखा त्योंही उनके मन में विषम सन्देह उत्पन्न हो गया। वे अपने को सहायहीन समझ कर नागौर को लौटे परन्तु नगर के पास पहुंचने से पहिले ही केलण जी ने तलवार निकाल कर उनको ललकारते हुए कहा "यह कब सम्भव था कि

रावल के पुत्र अपनी कन्या को लेकर आप के घर पर आते। बस अब सामना करिए।" इतना कह कर केलण जी ने भाग ते हुए चूड़ाजी का अपनी तीक्ष्ण तलवार के एक ही प्रहार से काम तमाम कर डाला।

वीर चूडाजी वृद्ध राणिङ्गदेव की तरह अपने अल्प संख्यक सैनिकों के साथ नागौर के द्वार पर भाटी वीरों से मार डाले गए। विजयी भाटी गण राणिङ्गदेव का समुचित प्रकार से बदला लेकर नागौर नगर को लौटकर स्वदेश को लौट गया। राठौड़ और भाटियों का यह भयङ्कर संग्राम वि० १४८४ के लगभग हुआ था। जैसलमेर के सिंहासनच्युत पुण्यपाल की सन्तति का सक्षिप्त ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेख के पश्चात् जैसलमेर के तत्कालीन रावल जैतसी जी का इतिहास वर्णन करना परम आवश्यक है।

महारावल जैतसी संवत् १३३२ में जैसलमेर के राजसिंहासन पर विराजमान हुए। उनके मूलराज और रतनसी नामक दो पुत्र हुये। मूलराज के देवराज, धनराज, और वतराज नामक तीन पुत्र हुए, तथा रतनसी के घड़सी और कानड़ नामक पुत्र हुए। इस कानड की सन्तान उनड़ नामसे इस सम आधी मुसलमान और आधी हिन्दु जाति में विभक्त है। मूलराज के पुत्र देवराजने जालौराधिपति सोनगड़े राजपूत की कन्या से विवाह किया। इस समय मुहम्मद (खूनी) ने मंडोर पर आक्रमण किया।

मंडोराधिपति राणा रूपसी ने क्रूर मुहम्मद से परास्त हो कर अपनी बारह कन्याओं के साथ महारावल जैतसी जी का आश्रय लिया। महारावल ने इनको अभय देकर अपने वाद्र नामक ग्राम में बसा लिया। सोनगडे वंश की कन्या के गर्भ से

देवराज के केहर, जघन, सिखन तथा हमीर नामके चार पुत्र हुए। इन में हमीर अत्यन्त बलवान् और साहसी था। वह मह-वोद्राधिपति कम्पोहसेन को परास्त कर उसके समस्त द्रव्य को लूट कर ले आया। हमीर के जेतू, लूनकर्ण और सीरो नामक तीन पुत्र हुए। इस समय दिल्ली, मुल्तान और नगरथटा आदि प्रदेश अलाउद्दीन गौरी के अधिकार में थे। अलाउद्दीन के सेनापतियों ने नगरठठा और मुल्तान के राजद्रव्य को तीन हजार खच्चरों की पीठ पर लाद कर भक्खरकोट (यह नगर इस समय सक्खर नाम से सिन्ध प्रान्त में प्रसिद्ध है) से अलाउद्दीन के पास दिल्ली को भेजा था। हमीर के पोतों ने वणिक भेष धारण कर उस समस्त द्रव्य को लूटने का विचार किया। उन समस्त राज कुमारों ने सात सौ घुड़सवार और बारह सौ ऊटों की सेना को लेकर सिन्धु नदी के किनारे पर पड़ाव डाला। उस अपरिमेय द्रव्य को रात्रि के समय में चार सौ मुगल और चार सौ ही पठानों ने सुव्यवस्थित रूप से एक जगह पर रखकर उसके चारों तरफ विश्राम किया। रात्रि के समय में ज्योंही यवन गण निद्रित हुआ त्योंहों भाटियों ने उस पर धावा बोल दिया और सब को मार कर उस समस्त धनराशि को जैसलमेर ले गए। मुगल सेना के दो चार अव-शिष्ट सैनिकों नें दिल्ली जाकर भाटी राजकुमारों के अत्याचार का समस्त वृतान्त अलाउद्दीन से कहा। बादशाह ने अत्यन्त क्रो-धित होकर जैसलमेर पर आक्रमण करने के लिये अपनी सेना को आज्ञा दी। इधर रावल जैतसी जी को भी यह समाचार मालूम हो गया। उन्होंने तुरन्तही वृद्ध, वालक तथा अन्तःपुर की बहुत सी स्त्रियों को मरूभूमि के प्रच्छन्न प्रदेश में भेज दिया। अल्प ही समय में अलाउद्दीन अपनी असंख्य सेना के साथ अजमेर के अनासागर तक आ पहुचा, परन्तु वह कार्य्यवश पहिले

जैसलमेर न आकर चित्तोड की तरफ़ चला गया· और सेनापति मीर महबूब खां तथा अलीखां को अपनी अजेय खुरासानी सेना के साथ जैसलमेर पर आक्रमण करने के लिये प्रेषित किये। महारावल जैतसी ने जैसलमेर के अभेद्य दुर्ग की रक्षा के लिये केवल चुने हुये पांच हजार वीर भाटी ही नियुक्त किये, और देवराज और हमीर को बहुतसी सेना देकर किले के वाहिर यवन सेना के मोरचों को तोड़ने तथा उनकी रसद को छीनने के लिये आज्ञा प्रदान की। प्रथमही सप्ताह में जब कि यवन सेना पूर्णतया अपनी मोरचा-बन्दी भी न करने पायी थी, वीर भाटियों ने अपने प्रबल आक्रमण से सात हजार यवनों को यमलोक पहुंचा दिया। इससे आतङ्कित हो कर बहुतसी यवन सेना भाग गई· परन्तु साहसी महबूबखां और अली खां ने अवशिष्ट सेना लेकर दुर्ग का अवरोध करना प्रारम्भ किया। पर मण्डोर से जो रसद आती थी उस को देवराज और हमीर मार्ग में ही लूट कर दूसरे मार्ग से किलेवालों को पहुंचा देते थे। इस से विवश होकर यवन सेना को जैसलमेर पर घेरा डाले ही रहना पड़ा। परन्तु यवन वीरों ने किसी भी प्रकार अपना साहस न छोड़ा। इस प्रकार युद्ध करते २ आठ वर्ष व्यतीत होगए। वृद्ध महारावल जैतसी जी का लड़ाई के आठवें वर्ष में किले में ही स्वर्गवास हो गया। वहीं पर उनका अग्नि संस्कार भी किया गया। उनके पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र मूलराज अपने पिता के उत्तराधिकारी हुए।

संवत् १३५० में अपने प्रधान मन्त्री और सामन्त जैचन्द राहड़, भीकण मल्ल सोहड़ तथा जसोड आशकर्ण आदि बुद्धिमान् मंत्रिओं की सम्मति से (१२४) महारावल

मूलराज ने पिताके पद पर अभिषिक्त होकर यवनों के साथ युद्ध करना आरम्भ किया। परन्तु इस प्रकार कई वर्षों तक

संग्राम होने के कारण रतन सी और मह बूबखां की आपस में मित्रता होगई। समरके पश्चात् विश्राम के समय वे दोनों आपस में एक खेजड़े के वृक्ष के नीचे बैठकर प्रतिदिन सुखपूर्वक वर्तालाप करते थे। मूलराज के अभिषेक का समाचार सुन कर यवन सेनापति महबूबखां ने रतनसी से कहा 'मैं वर्षों तक लड़ कर भी जैसलमेर के दुर्ग को अपने अधिकार में न कर सका, इससे अलाउद्दीन मेरे उपर पक्षपात का दोषारोपण करेंगे। अतः मैं कल प्रातः काल ही प्रवल आक्रमण से दुर्ग को अपने अधिकार में करनेका पूर्ण प्रयत्न करूंगा।" महबूब खां के इन वचनों को सुनकर रतनसी मुस्कराकर नियमित समय पर अपने दुर्ग में चले गए। दूसरे दिन प्रातः काल ही यवनों ने दुर्ग पर प्रवल आक्रमण किया, पर यादव सेना ने किले के चारों तरफ की दीवारों पर से बड़े २ पत्थरों के प्रहारों से आक्रमणकारी गण को मार भगया। इस उत्तुङ्ग दुर्ग की दिवार पर आरूढ़ होने के लिये ज्योंही यवन वीर दुस्साहस करता त्योंही वह अनगढ़ पत्थर के आघात से विताडित होकर लुड़कता हुआ अपने सहायकों को भी साथ लेकर पहाड़ के निम्न भाग में जा गिरता। इस प्रकार अति साहस करने पर भी महबूबखां जब इस दुर्ग को न पासका तब वह अत्यन्त लज्जित और हताश होगया। इस आक्रमण में भी उसके नव हजार वीर यवन काम आये। उस समय तो वह अपनी अवशिष्ट सेना को लेकर मैदान में भाग गया, परन्तु थोड़े समय के पश्चात् फिर उसने बहुतसी सेना एकत्रित करली। अबकी बार उसने दुर्ग को चारों तरफ से घेरलिया; इस लिये दो वर्ष पर्य्यन्त बाहिर से किसी भी प्रकार की सहायताके न प्राप्त होने से दुर्ग में रुकी हुई यादव सेना जब अत्यन्त ही कष्ट उठाने लगी तब सीहड़ बीकमसी ने यवनों को धोखा देने के

लिये एक अनोखा उपाय सोचा। उक्त सामन्त ने मोतियों को पीस कर सूरियों के दूध में मिला दुर्ग की नालियों में बहाना आरम्भ किया, यह देखकर शत्रुगण अत्यन्त ही हताश होगया। वह सोचने लगा कि अभी तक तो दुर्ग में दूध की नालियां वह रही हैं। ऐसी दशा में इसको अपने अधिकार में करना सर्वथा अपनी शक्ति से वाहिर है। ऐसा सोच कर यवन सेना-पति अपनी अवशिष्ट सेना को लेकर वहां से भागना चाहता ही था कि इतने में जाति द्रोही भीमदे नामक भाटी ने सुर-नाइ में भाटी जाति के पुरातन शत्रु एक लड़के को सङ्केत द्वारा समझा दिया कि यह सब तोत है। जरासा धैर्य्य रक्खो। भाटी सेना बुभुक्षित होकर अपने आप दुर्गको छोडना चाहती है। बस फिर क्या था, यवनगण द्विगुणित उत्साहित होकर दुर्ग का अवरोध करने लगे। इधर यादव सेना ने जब देखा कि यवनगण पीछा लौटकर उत्साह के साथ दुर्गका अवरोध कर रहा है तब महारावल मूलराज ने अपने समस्त सामन्त मण्डल को एकत्रित करके गम्भीर स्वर से कहा, "हम लोगों ने वीरोचित पराक्रम से बहुत वर्ष तक अपने दुर्ग की रक्षा की परन्तु अब भोजन के अभाव से हम लोग अत्यन्त कष्ट उठा रहे हैं। शरीर अनित्य है और मरना निश्चित है, ऐसी दशा में हमारा कर्तव्य है कि हम अब अन्तिम वार अपनी मातृ भूमि से विदा लें, हम सबका जन्म वीर वंशमें हुआ है अतः हम सम्मान रक्षा के लिये अन्तिम वार तीक्ष्ण तलवार को हाथ में ले कर शत्रुगण के मुकुट जडित रत्न रूपी कसौटी पर उसकी धार को शान चढावें।" महारावल ने इस प्रकार अपने वीर रसपूर्ण वाक्यों से समस्त सामन्त-मण्डल को उत्तेजित करके अपने लघु भ्राता जैतसी के साथ अन्तःपुर में प्रवेश किया। उन्हों ने अन्तः पुर निवासिनी अपने कुटुम्ब की

समस्त महिलाओं को एकत्रित करके कहा " हमने अपने जाति गौरव के सम्मान के लिये चिर काल तक इस प्राणप्रिय दुर्ग की रक्षा की परन्तु अब भोजन के अभाव से हम उसको बचाने में सर्वथा असमर्थ हैं। दुराचारी यवन दल विजयी होते ही हमारी मातृभूमि की, हमारी साध्वी स्त्रियों की और हमारे देव स्थानों की दुर्दशा करेगा। इससे तुम इसी समय "जौहर व्रत" धारण करके हमसे पूर्व ही स्वर्ग में जाकर हमारी प्रतीक्षा करो "।

महारावल के वचनों को सुन कर सोढा वंश की पाट रानी ने मुस्करा कर कहा " प्राणनाथ आप इस के लिये अधिक चिन्ता न करें, कल प्रातः काल होते ही हम सब स्वर्ग लोक को चली जावेंगी। उसी रात्रि को सब से प्रथम महारावल की परम-पुनीता अर्द्धाङ्गिनी ने सोलह शृङ्गारों से अपने शरीर को आभूषित कर के और अपने प्राणनाथ के चरण कमलों को छूकर अग्नि में प्रवेश किया। उस सती के पवित्र तेज-पुञ्ज से अग्नि देव द्विगुणित प्रज्वलित हो उठा, तब उस भभकती हुई आग में दुर्गस्थित आबालवृद्ध राजपूत ललनाओं ने अपने प्राणों की आहूति दे डाली। इस प्रकार देखते ही देखते चौबीस हजार स्त्रियों ने अग्नि में प्रवेश कर प्राण त्याग दिये। तब निश्चिन्त यादव दलने राज महल की प्रत्येक वस्तु को अग्नि में डाल दिया। क्षुधित यादव सैना दुर्ग द्वार खोलने के लिये आगे बढ़ी। उसी समय रतन सी ने घड़सी और कानड नामक अपने दो राज कुमारों को अपने पगड़ी बदल, भाई शत्रुसेना के अधिपति महबूब खां के पास प्राण रक्षा के लिये भेजदिया। महबूब खां ने अत्यन्त सम्मान के साथ उनको अपने डेरे में बिठादिया। जब दोनों राज कुमार महबूब खां

के पास सकुशल पहुँच गये तब यादव सैना ने तुरन्त ही दुर्ग का द्वार खोलदिया।

ज्योंही यवन दल शीघ्रता पूर्वक दुर्ग में प्रवेश करने लगा त्योंही भाटी गण अपनी तीक्ष्ण तलवार हाथ में ले उस के सामने आ डटे। इस भयंकर युद्ध में अकेले वीर रतनसी ही एक सौ बीस यवनों को मार कर स्वर्ग धाम पधारे। महारावल मूल राजने भी कई सौ यवनों को यम सदन भेज कर अपने सात सौ वीरों के साथ स्वर्गवास किया। मूलराज को मृत्यु के पश्चात् विजयी यवन दल ने किले में प्रवेश किया। इस प्रकार विक्रमाब्द १३५१में दुष्ट यवनों ने भाटी वंश को विध्वंस करके बहुत समय तक उस शून्य दुर्ग पर अपना अधिकार रक्खा। अन्ततः वहां रहने में किसी भी प्रकार का लाभ न सोच कर यवन सेनापति उस विध्वस्त दुर्ग के समस्त दरवाजों में ताले लगा कर वहां से चल दिया।

इस प्रकार यवन सैनापति के चले जाने पर इस पुरातन दुर्ग को शून्य देख, महबूब खां सैनापति के साथी एक फकीर ने महोवा के नेता तथा खेड़ के अधिपति राठौड़ मालाजी के पुत्र जगमाल के पास जा कर उस से कहा कि जैसलमेर का प्रसिद्ध दुर्ग इस समय सूना पड़ा है; आप अनायास ही इस समय उस को अपने अधिकार में कर सकते हैं। फकीरके वचनों से उत्साहित होकर जगमाल ने शीघ्र ही सात सौ अन्न से भरे हुये शकट और बहुतसी सेना के साथ सकुटुम्ब जैसलमेर की तरफ प्रस्थान किया। दैव योग से जगमाल के जैसलमेर पर अधिकार करने के समाचार भाटी राजवंशीय उसोड के दूदा (दुर्जनशाल) और तिलोकसी नामक पुत्रों को मालुम हो गये। वे इस समय सिन्ध प्रदेश के थर पार कर प्रान्त में

जैसलमेर को महवूब खां की सेना के लिये शाह की तरफ से भेजी हुई भोजन सामग्री को लूट कर अपना निर्वाह करते थे। महवूब खांने इन की लूट खसोट से तङ्ग आ कर जैसलमेर को छोड़ दिया; पर जव उन्हों ने अरक्षितावस्था में अपनी राजधानी पर राठोड़ों के आधिपत्य के समाचार सुने तव स्वदेश प्रेम और आत्म गौरव से उत्साहित होकर उन्हों ने शीघ्रही अपने समस्त अनुयायियों के साथ जगमालका पीछा किया। वे द्रुतगति से जैसलमेर की तरफ आरहे थे कि मार्ग में उन का पाहू जातिके तोले नामक सरदार के साथ परिचय होगया। तोले के पास उस समय वहुतसे अश्वारोही थे इस से नीति विशारद दूदा और तिलोकसी ने उससे कहा कि यदि आप जैसलमेर के उद्धार करने में हमें सहायता प्रदान करेंगे तो आप के इस राज्य का आधा हिस्सा देदेंगे। उन के मधुर वचनों से मोहित तोला उसी समय अपने सैन्य वल के साथ उन के सैन्य में सम्मिलित हो गया। इस प्रकार अपने सैन्यवल को वढ़ाकर वे दोनों भ्राता जव जैसलमेर के अत्यन्त निकट पहुँचे तव रतनू वंशी आशकरण चारणने उन को सूचित किया कि दुपहर टालने के लिये जगमाल तो भू नामक ग्राम में सो रहा है और उस के अन्नपूर्ण सात सौ शकट जैसलमेर को जा रहे हैं। यह सुन कर उन दोनों भ्राताओं ने तत्काल ही जैसलमेर के दुर्ग मे प्रवेश किया। उनके प्रवेश करने के पश्चात् अल्प समय में ही वे सात सौ गाडे जैसलमेर की तलहटी में आपहुँचे, दूदा और तिलोकसी ने उन सव गाड़ी को अपने दुर्गके भण्डार में खाली करवा कर प्रत्येक गाड़ी वाले किसान को २॥ सेर अन्न खाने को दिया और अपने दूत द्वारा पांच कोश की दूरी पर दुपहरी टालने के लियेससैन्य विश्रामार्थ ठहरे हुये जगमाल से कहलाया कि आप हमारे सम्वन्धी हैं, आप को ऐसे

समय हमें सहायता देना उचित था न कि हमारी अरक्षित राजधानी पर अधिकार जमाना । अस्तु अब भी आप लौट जाइये । दूतसे यह समाचार सुन कर जगमाल अत्यन्त ही लज्जित हुये और जैसलमेर में आकर उन दोनों भ्राताओं से मिले । उसने कहा जैसलमेर को अनाथ देख कर अपने अधिकार में करने की मेरी अभिलाषा थी परन्तु अब आप उसके वास्तविक सत्वाधिकारी आगये हैं इस लिये मैं ससैन्य अपने देश को जाता हू । इतना कह कर वह अपनी समस्त सैना के साथ खेड़ को चला गया । जिस गाव में जगमाल ने दुपहरी टाली थी उसका नाम भू है । वह जैसलमेर से पांचकोश दूर है । आजतक भी वहां की जनता में "भू की दुपहरी" (भू का बेपार) नाम की कहावत प्रसिद्ध है ।

जगमाल के जाने पर तोला ने राज्य का आधा हिस्सा मांगा तब दोनों भाटी कुमारों ने उसको समझाया कि हमने अपने बुद्धि बल से ही समस्त राज्य को हस्तगत किया है तुम्हारी सैना की तो हमें कभी आवश्यकता ही न पड़ी । परन्तु तोला ने उनके वचनों का कुछ भी ख्याल न किया और वह अपने सैनिकों के साथ नगर में अनेक प्रकार के उपद्रव मचाने लगा । तब एक दिन तिलोकसी ने क्रोधित होकर अपनी तीक्ष्ण तलवार के एक ही वार से उसका शिरः छेद कर दिया । इस प्रकार १२५ वीर दूदा अपने बाहुबल से पूर्वजों की राजधानी पर अपना अधिकार जमा कर विक्रमाब्द १३५६ में राजगद्दी पर विराजमान हुए । उन के भ्राता तिलोकसी महावीर और अत्यन्त साहसी पुरुष थे । नगर टट्टे के पहाड़ी प्रदेश में कुगरा नामक अत्यन्त दुर्धर्ष और वीर बलोच रहता था; तिलोकसी ने उस को मार कर उस की नामी घोड़ियें और बहुत सी द्रव्य

छीन लिया। उन्हों ने अपने बाहुबल से कई वार जालौर और आबू शिखर को लूट लिया। उन्हों ने प्रबल आक्रमण करके गुजरात प्रदेश की पांच हजार भैंसे तथा हाँसी और हिसार की सांढों के बहुत से वर्ग अपने अधिकार में कर लिये। उन्हों ने कई वार नागौर देश को लूट लिया। वे बड़े दातार थे। उन्हों ने लूट के समस्त द्रव्य को साधु ब्राह्मणों के चरणों में समर्पित कर दिया।

रावल दूदाजी ने खींवसर के कर्मसोत राजपूत की कन्या से विवाह किया। खींवसर की राज कुमारी ने जैसलमेर जाते समय अपने पिता से शादू वशीय हूंका चारण को अपने साथ ले लिया। वह चारण बड़ा कवि था। वह समय २ पर रावल दूदा को अपनी वीर रस पूर्ण कविता से मोहित कर देता था। रावल दूदा जी के उस खींवसर की राज कन्या से पांच पुत्र हुये।

एक समय वीर तिलोकसी अपने साले राठोल हाफा के साथ चौसर खेल रहे थे। खेलते २ उन्हों ने हाफा को हरा कर उस की हँसी की; इस से हाफा अत्यन्त अप्रसन्न हुआ वह क्रोधित हो कर जैसलमेर से चला गया परन्तु जाते समय उसने अपने अनुयायियों के साथ भाटीराज के कराह वन में से बहुत सी सांढे चुरा ली। तिकोकसी ने तत्काल ही उन का पीछा किया। वह ओढनिया नामक गाँव पर पहुंच कर विश्राम करने की तैयारी कर रहाथा कि इतने में तिलोकसी भी वहा आ पहुंचे। वीर तिलोकसी ने १५० राठोड़ों के साथ अपने साले हाफा को वहीं मार कर अपनी सांढे वापस कर ली। परन्तु जैसलमेर पहुँचने पर रावल दूदाजी ने इस कार्य के लिये उन को बहुत कुछ भला बुरा कह कर अपनी अप्रसन्नता दिखलाई। पर तिलोकसी अपना शिर नीचा किये मौन हो सुनते रहे। अल्प काल के पश्चात् उन्हों ने जैसलमेर से बाहर निकल कर अन्य राज्यों में लूट खसोट करना आरम्भ किया।

उन्होंने सोनगड़ों के समस्त प्रदेशों को लूट लिया। यद्यपि उनके उपद्रवों से आस पास का समस्त राजन्यगण तंग आगया था परन्तु उन का सामना करने के लिये कोई भी खड़ा न होता था। तिलोकसी वारम्वार विजयी होने से इतने दृप्त और साहसी हो गये थे कि एक समय उन्हों ने अपनी अजेय सेना के साथ अजमेर में जाकर दिल्ली के तत्कालीन वादशाह फिरोज शाह के वहुत से उत्तमोत्तम अश्वों को अपने अधिकार में कर लिया।

पाण्डु लोग शाही घोड़ोंको अनासागर में स्नान करवाकर वापस ले जा रहे थे, साहसी तिलोकसी ने उन सव को छीन कर जैसलमेर भेजदिया। अश्व रक्षकों ने तुरन्त ही वीर तिलोकसी की उद्दण्डता की पुकार फीरोजशाह के कानों तक पहुंचा दी। शाह अपनी सवारी के वहुमूल्य अश्वों के छीने जाने का समाचार सुन कर आग ववूला हो गया। उसने अपने सैनानी कमालुद्दीन और मलक काफरको जैसलमेर विध्वंस करने के लये अनगिनत सेना के साथ भेज दिया। यवन सेना ने तुरन्त ही आकर जैसलमेर को चारों तरफ से घेर लिया। छः वर्ष पर्य्यन्त भयंकर युद्ध चलता रहा परन्तु सातवें वर्ष रसद न मिलने के कारण दुर्गस्थ भाटी वीर भूखों मरने लगे, तव दूदा और तिलोकसी ने अपने पूर्वजों के समान अन्तःपुर की स्त्रियों को सुहाग वल देकर जौहर व्रत का अवलम्वन किया। इस भयंकर सग्राम में जसौड उत्तैराव ने अच्छी वीरता दिखलाई; उसने मरते २ कई सौ यवनों को मार डाला। वह वीर झुझार हो कर जैसलमेर की जनता से अभी तक पूजा जाता है, अभी तक उस के देवल की प्रत्येक वर्ष में एक वार वडे समारोह के साथ पूजा होती है। उनके विना शिरके अश्वारूढ़ कलेवर को देख कर भाटी जाति के शरीर में अभीतव

नवीन रक्त का प्रसार होता है। उत्तैराव के मरने पर रावल दूदा और वीर तिलोकसी ने साढ़े पांच हजार भाटियों के साथ दुर्ग को मुक्त द्वार कर दिया और यवन सेना का सामना किया।

उन्हों ने असंख्य यवनों को यमसदन भेज कर अन्त में एक २ करके सबने ही स्वर्गवास किया। विजयिनी यवन सेना तत्काल ही दुर्ग में घुस कर लूट पाट मचाने लगी। उस समय महारावल दूदा की महारानी अपने पीहर थी। चारण हुफे ने खीचसर जाकर महाराणी को यह अमंगल कथा कह सुनाई। महारानी ने उस से अपने पति देव के शिर को लाने के लिये कहा। हुंफा ने यवन सेनापति के पास जाकर महारावल के शिर के लिये प्रार्थना की। सैनापति ने कहा कि रणस्थल मे असंख्य भाटियों के कटे हुये शिर पड़े हैं, यदि तुम रावल के शिर को पहचान सकते हो तो बड़ी खुशी के साथ लेजा सकते हो।

हूंफे ने कहा कि महारावल के शिर को पहचानना मेरे लिये कोई कठिन कार्य नही है; उनका शिर वीर-रस पूर्ण गाथाओं को सुन कर अपने आप मुस्करायेगा। कविराज की इस अद्भुत बात को सुन कर यवन सेनापति भी अपने अनुचरों के साथ रणस्थल में पहुँचा। हूंफे ने रावल की भूत कालिन अनेक प्रकार की वीर रस पूर्ण गाथाओं और कवितों को कह सुनाया। उस को सुनते ही महारावल का शिर जब खिल खिला उठा तब उपस्थित जन समुदाय आश्चर्यान्वित हो कर हूंफे की कवित्व शक्ति की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगा।

हूंफे की कवित्व शक्ति का परिचायक निम्न लिखित दोहा राजस्थान में सर्वत्र प्रचलित है :—

शादू हूंफे सेवियो साहब दुर्जन सल्ल ।
विड़दाँ माथो बोलियो गीतों दूहां गल्ल ।

इस प्रकार जैसलमेर का यह प्राचीन दुर्ग विक्रमाब्द १३६२ में दुबारा विध्वस्त हो कर यवन गणके अधिकार में चला गया। रावल दूदा ने दश वर्ष तक जैसलमेर का राज्य किया था। उन के परलोक वास के पश्चात् जैसलमेर फिर पहिले की तरह ऊजड़ हो गया।

यह पहले लिखा जा चुका है कि मूलराज के लघु भ्राता रतनसी ने अपने घड़सी और कानड़देव नामक दो पुत्रों को महबूब खां के पास रक्षार्थ भेज दिये थे परन्तु इस युद्ध में महबूबखां भी मारा गया था इस से इन दोनों कुमारों की रक्षा का भार उस के पुत्र गाजी खां और जुलफिगार खां ने अपने ऊपर लिया। ये दोनों भाटी राजकुमार गुप्तरूप से अपनी मातृभूमि के दर्शन करने को कभी-२ आया करते थे। एक समय घड़सी जी एक नाई के साथ अकेले ही जैसलमेर से लौट कर महोवा के अधिपति जगमाल से मिले वहा पर उनका जगमाल की कन्या के साथ प्रेम सम्बन्ध हो गया। उस कन्या का नाम विमलादेवी था। जगमाल ने वहीं पर उनका विमलादेवी के साथ विवाह कर दिया।

घडसी जी ने अपनी नव परिणिता स्त्री को अपने श्वसुर गृह में ही छोड कर अपने मित्र भाटी जैचन्द के पुत्र लूणग को बीकानेर से तथा राहाड़ कंगण के पुत्र पनेराज को जैसलमेर से अपने पास बुला कर स्वराज्य को हस्तगत करने के लिये दिल्ली को प्रस्थान किया, मार्ग में उन का मामा सोनङ्ग देव भी इन के साथ आ मिला। ये तीनों ही महावीर और आजान-बाहु योद्धा थे।

एक समय दिल्ली के बादशाह ने खुरासान के अधीश्वर से पारि-तोषिक में पाये हुये लोह निर्मित बड़े भारी धनुष को रा-ज सभा में ला कर उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ाने के लिये उपस्थित वीरों से कहा। बादशाह की सभा में उस समय एक महावली खुरासानी यवन भी उपस्थित था। पहले उसने ही इस विकट धनुष की प्रत्यञ्चा को चढ़ाने का प्रयत्न किया परन्तु वह इस कार्य में सफल मनोरथ न हो सका। तब सोनङ्गदेव ने उठ कर उस धनुष की प्रत्यञ्चा को एक दम चढ़ा दिया। इस कार्य में प्रथमतः ही खुरासानी के सफल मनोरथ न होने से बादशाह को दृढ विश्वास होगया था कि हिंदून्वीर धनुषमें प्रत्यञ्चा को चढा ना तो दूर रहा इस को उठा भी न सकेगा परन्तु सोनङ्गदेव के इस कार्य से सम्राट् अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ।

इन्हीं दिनों तैमूर शाह ने दिल्ली पर आक्रमण किया। वीर घड़सी ने अपने अनुयायियों के साथ दिल्लीपति की तरफ से अपना पराक्रम दिखला सम्राट् की ऐसी सहायता की कि जिस से दिल्लीश्वर ने प्रसन्न हो कर उन को गजनी के "जैतवार" (गज- नी विजई) की पदवी प्रदान की और उसी समय उनको अपने अधिकृत राज्य का उर्वर प्रदेश उपहार में देना चाहा परन्तु घडसी ने उससे अपने पूर्वजों की राजधानी (जै सलमेर) की ही सनद मांगी। सम्राट् ने प्रचलित रीति के अनुसार उस समय उनको सनद- पत्र देकर वहां से जैसलमेर को बिदा किया। घड़सी अपने दल बल सहित चल कर जैसल-मेर से एक कोस दूर पर ठहर गया और बादशाह के आज्ञा पत्र की प्रति लिपि जैसलमेर के तत्कालीन नबाव के पास भेज दी। यवन सेनापति ने धूर्त्तता से कहला भेजा कि जब सम्राट् की तरफ से तीन हुक्म आवेंगे तब जैसलमेर तुमको दे दिया जायगा। दूत यवन सेनापति का कोरा जबाव घड़सी

जी को सुना हो रहाथा कि इतने ही में दो ववर मुसलमान तेज घोड़ों पर सवार घड़सी जी के पास आ पहुँचे। वे सम्राट् का दूसरा आज्ञा- पत्र नवाब के पास ले जा रहे थे। घड़सी जी ने उनको रोक कर वह पत्र उन से छीन लिया। इस पत्र में सम्राट् ने, तैमूरशाह के द्वितीयाक्रमण से पराजित होने पर जैसलमेर में आश्रय मिलेगा इस आशङ्का से दुर्ग को खाली न कर अपने अधिकार में ही रखने के लिये नवाब को लिखा था। घड़सी जी इस समाचार को पढ़कर अत्यन्त क्रोधित हुये। वे किंकर्तव्यविमूढ हो कर कुछ सोच ही रहे थे कि उन के सहचारी एक शकुनी ने उन से कहा कि कार्य सिद्धि के लिये इस समय नरबलि करना परमावश्यक है। उत्तेजित भाटी कुमार ने उसी समय उन दोनों ही प्रचण्ड ववरों के शिर काट डाले। उसी दिन से वह स्थान ववर मगरे के नाम से प्रसिद्ध है।

ववरों को काट कर घड़सी जी सायंकाल के समय अपने दल के साथ जैसलमेर में घुसे। उन्हों ने अपनी जन्म भूमिको चारों तरफ से उजड़ी हुई पाया। इतने विशाल देश में अल्प संख्यक नीच जाति के मनुष्य और यवन ही रहते हैं यह देख कर वे अत्यन्त ही दुःखी हुये। आगे चल कर उन्हों ने देखा कि नवाव का दुष्ट पुत्र मदिरोन्मत्त हो कर एक कुँभारी के घर में घुस कर उस पर अत्याचार कर रहा है। घड़सी ने वहीं उस को एक दम पकड़ लिया। यवन शासक ने देखा कि इस समय घड़सी से विजय पाना सर्वथा असम्भव है। तब उस ने इस शर्त पर दुर्ग खाली किया कि इन कार्य्य से यदि सम्राट् मुझ पर क्रुद्ध हुआ तो आप अवश्य ही मुझ को आश्रय प्रदान करेंगे। घड़सी ने इस के लिये यवन सेनापति को पूरा आश्वासन दिया। तब वह दुर्ग खाली कर के वहां से चला गया।

नवाव के इस कार्य्य से साम्राट् अत्यन्त अप्रसन्न हुआ। तब वह वहां से भाग कर फिर जैसलमेर में सर्वदा के लिये भाटियोंका आश्रित होकर रहने लगा।

इस प्रकार१२६ वीर घडसी जी ने अपने वाहुवल से अपने जन्मभूमि का उद्धार कर विक्रमाब्द १३७३में महारावल पद को स्विकार किया। उन्हो ने उजड़े हुये प्रदेश को आवाद करने के लिये वहुत से कूप और सरोवरों का जीर्णोद्धार किया। उन की राज्य प्राप्ति से सर्व सामन्त और प्रजा परम संतुष्ट हुई पर जसोड़ की सन्तान जिसने पहले अपने पराक्रम से इस राज्य पर थोडे समय के लिये अधिकार कर लियाथा, इस नवीन महारावल की राज्यप्राप्ति से असंतुष्ट हुई।

महारावल घड़सीजी ने रावल पद पर अभिषिक्त होकर अपना दूसरा विवाह राठौड मल्लीनाथजी की कन्यासे किया। उन्होंने जसोड़ों को दमन करने के लिये मल्लिनाथ जी के पुत्र जगमाल और कूंपा जीको कोटड़ा और वाहड़मेर नाम के अपने राज्य के प्रदेश देकर उनको अपना उमराव वनाया तथा खास जैसलमेर में उनके रहने के लिये दो वडी हवेलियें वनवादीं। उन्होंने जैसलमेर के पूर्वी द्वार के पास ही अपने नाम से एक वडा सरोवर खुदवाया। वे प्रतिदिन अश्वारूढ होकर उस सरोवर को निरिक्षण करने के लिये जाया करते थे। एक दिन वे सरोवर से लौट रहे थे कि मार्ग में जसोडतीमे के पुत्र दुष्ट आसकरण ने महारावल पर सहसा खड्गहस्त हो आक्रमण किया। उसकी तीक्ष्ण तलवार के प्रथम ही वार से महारावल का शिर कट कर जमीन पर गिर पडा। उनका खाली घोड़ा वहां से भाग कर दुर्ग में चला आया। तत्काल ही इस अमंगल घटना का समाचार नगर में चारों तरफ फ़ैल गया। राव

मल्लीनाथ की कन्या तथा महारावल की और उपपत्नियां उसी समय उनके शव के साथ सती होगईं। परन्तु महारानी विमला देवी ने उस समय सती होना उचित न समझा। महारावल के कोई सन्तान न थी; इस लिये वह महाराणी उन के उत्तराधिकारी के विषय में सोचने लगी। उसने बहुत कुछ सोच विचार के पश्चात् सर्व सम्मती से महारावल मूलराज जी के पुत्र देवराज के बेटे केहर को महारावल पद पर अभिषिक्त करने को बुलाया। कुमार देवराज ने मण्डौर के अधीश्वर राणा रूपडे पडिहार की कन्या के साथ विवाह किया था; उस कन्या से देवराज के केहर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

अलाउद्दीन ने जिस समय जैसलमेर पर आक्रमण किया था महारावल ने उसी समय कुमार केहर को उस की माता के साथ मण्डौर भेज दिया था। केहर बारह वर्ष की अवस्था में राजभ्रष्ट मामा के आश्रित ग्वालों के साथ जङ्गल में जाया करता था। एक दिन वह खेलता २ वहीं पर सो गया। पास ही एक सर्प का बिल था। उस की निद्रावस्था में उस समीपवर्ती बिल में से एक सर्प ने बाहर निकल कर उस के शिर पर अपना फन फैलाया। उस के शिर पर सर्प के फन की छाया देख कर मार्गगामी एक चारण ने राणारूपडे को वहां लेजा कर उन्हें यह अद्भुत दृश्य दिखलाया। राणा के पूछने पर भविष्यवेत्ता चारण ने कहा कि यह सुन्दर कुमार अवश्य ही किसी समय राजपद पर अभिषिक्त होगा।

विमला देवी १२७ कुमार कहर को राजसिंहासन पर बैठाकर महारावल वड़सी जी की छमासी पर सती होगई। सती होने से प्रथम ही महाराणी ने केहकर से यह प्रतिज्ञा

करवाती थी कि तुह्मारे पश्चात् हमीर की सन्तान ही जेसलमेर के राज सिंहासन पर बैठेगी। हमीर केहर का ज्येष्ठ भ्राता था वह अत्यन्त साहसी था । अलाउद्दीन के जैसलमेर पर आक्रमण करने पर उसने बड़ी वीरता दिखलाई थी। उनके जैतसी और लूण करण नामक दो पुत्र पैदा हुये ।

महाराणी विमला देवी के आज्ञानुसार माहरावल केहर ने अपने ज्येष्ठ भ्राता (हमीर) के पुत्र जैतसी को युवराज बनाया। जैतसी के युवा होने पर कूमलमेर के महाराणा कुंभने अपनी कन्या का विवाह करने के लिये उसके पास नारियल भेजा। कुमार ने अपने अनुचरों के साथ विवाह के लिये प्रस्थान किया। उसके आबू पहाड़ से बारह कोस उरली तरफ पहुंचने पर सालवनी के नेता सांकला मेहराज मिला। कुमार ने उस को भी अपने साथ ले कर आगे को प्रस्थान किया। वह कूमलमेर से थोडी दूर था की उसको अपनी बाईं तरफ तींतर की आवाज सुनाई दी। मेहराज का साला पक्षियों की भाषा से पूर्ण अभिज्ञ था। उसने तीतर का दाहिनी तरफ बोलने का फल विवाह यात्रा में अशुभ बतलाया। जैतसी ने उस के कहने पर उस दिन वहीं विश्राम किया। उसी समय जैतसी के एक अनुचर ने उस तीतर को पकड लिया। वह पक्षी एक चक्षु था। प्रातः काल होते ही जैतसी ज्योंही कुछ आगे बढे तो उन्हों ने व्याघ्री के चिल्लाने की आवाज सुनी। कुमार ने सांकले के साले को बुला कर इस चिल्लाहट का फल पूछा। उसने कहा कि इस प्रकार के शकुन देखते हुये आप को एक दम कुमलमेर जाना उचित नहीं है; मेरी सम्मति से तो आप यहीं ठहर कर किसी विश्वास पात्र सेवक से कुमलमेर का विवाह सम्बन्धी वास्तविक समाचार मंगवाइये।उसके ऐसा कहने पर कुमार ने एक साहसी राजपूत को नाइन का वस्त्र पहना कर

कुमलमेर के अन्त:पुर में भेजा। उसने वहां से लौट कर कुमार को अमङ्गल समाचारों की सूचना दी। कुमार उसकी वात पर विश्वास कर वापिस लौट आया। उसने राणा की कन्या से विवाह न कर सांकले की कन्या से विवाह कर डाला। यह साकला प्रथम तो पूगलपति राव राणिङ्गदेव का प्रधान सामन्त था परन्तु पीछे से वह राव से लड कर चूडाजी के पुत्र अर्डकमल की आधीनता में रहने लगा।

जैतसी के इस असदाचरण से महाराणा कुम्भ अत्यन्त ही क्रोधित हुये थे परन्तु वे उस का कुछ भी न कर सके। जैतसी ने जव कुमलमेर के अधिपति माहाराणा कुम्भ के पास न जाकर सांकले की कन्या के साथ विवाह कर लिया तव माहारावल केहर जी उस से अत्यन्त अप्रसन्न हुये। उन्हों ने जैतसी से कहला भेजा कि तुम अव अपना मुख मुझे मत दिखलाना। महारावल के अप्रसन्न होने से सांकले की सम्मति से जैतसी ने अपने भ्राता लून करण को वुला कर पूगलगढ़ पर अपना अधिकार करना चाहा। वीर राणा राणिङ्गदेव ने आक्रमणकारी उन दोनों भ्राताओं को मार डाला। वृद्धराव जी को जव मालूम हुआ कि मृतक दोनों व्यक्ति वीर महारावल के अत्यन्त निकटवर्ती सम्वन्धी हैं, तव उस को वडा भारी शोक हुआ। वे अत्यन्त दु:खी हुये। इस प्रायश्चित के लिये उन्हों ने भारतवर्ष के समस्त प्रसिद्ध तीर्थों पर जाकर स्नान दानादि किया। अन्त मे वे काले वस्त्र पहन कर महारावल केहर की सेवा में उपस्थित हुये।

महारावल उस समय कुल देवी की आराधना के लिये मन्दिर में विराजमान थे। तव उन को यह मालूम हुआ कि वृद्ध राणिङ्गदेव यहां आ गये हैं तव वे स्वयं उनके सम्मानार्थ उनके सामने गये।

महारावल को आते हुये देखकर वृद्ध रावजी उनके चरणों में गिर पडे। महारावल ने उन को फौरन उठा कर प्रेम पूर्वक उन्हें छाती से लगा कर कहा कि कुमार आपही के थे। उन्होंने अपनी करणी का फल पाया, इस में आप का कोई अपराध नहीं है। इस प्रकार उन के अज्ञात अपराध को क्षमा कर के उन्हें धैर्य प्रदान कियो। महारावल केहर के निम्न लिखित आठ पुत्र थे। सोम, लखमण, केलण, कुलकरन, बीजू, तन्नू और तेजसी। महारावल केहर के ज्येष्ठ पुत्र सोमजी के निम्न लिखित तेरह पुत्र हुये। रूपसी, देवराज, रतनो, जेतमाल, भोजदे, जीवो, पर्वत, राजो, खेतसी, जेसो, महा जल, हरखो, वीरमदे, इन सब की सन्तति सोम भाटी के नाम से विख्यात है।

केलण के चोवीस पुत्र हुये। उनमेंसे आठ का वंश इस समय तक चला आ रहा है। केहर के चतुर्थ पुत्र कलकरन के जेसा नामक पुत्र हुआ। उस जेसे की सन्तति जेसा भाटी कहलाती है। जोधपुर राज्य के लवेरे, बड़ी आदि ठिकानों पर जेसे भाटियों का परम्परा से अभी तक आधिपत्य चला आरहा है।

चूडाजी से बदका लेने के लिये राणिङ्ग देव के तनु और मरू नामक पुत्रों ने मुलतान के बादशाह की अधीनता में यवन धर्म को स्वीकार कर लियाथा, इससे उनके सनातन धर्म के अनुसार पैतृक राज्य से सर्व सत्व जाता रहा, और उनकी सन्तान मोमन भाटी के नाम से विख्यात हुई।

इस समय महारावल केहर के तृतीय पुत्र केलण ने मरोट और पूगल पर अपना अधिकार करलिया। केलणजी अति साहसी वीर थे। उन्होंने अवसर पाकर देया राजपुत्रों के

अधिकार में गई हुई अपने पूर्वजों की प्राचीन राजधानी देरावल पर भी अपना अधिकार करलिया। उन्होंने व्यास नदी के समीप अपने पिताके नामसे नवीन दुर्ग बनवाना आरम्भ किया। इस कारण से जोहिया और लगाहों ने सम्मिलित होकर अपने नेता अमीरखां के साथ केलणजी पर आक्रमण किया। वीर केलण ने प्रथम ही वार से शत्रु के छक्के छुडा दिये। इस विजय से चोहिल, मोहिल जोहिया आदि समस्त प्रतिपक्षी उनका लोहा मान गये। उन्हों ने शनैः २ अपना अधिकार पंजाब तक बढ़ा लिया। उन्होंने समिजाम नामक समावंश की राज कुमारी के साथ विवाह किया। केलण जी के विवाह के अनन्तर समावंश के राजा का देहान्त होगया इससे उसके उत्तराधिकार के विषय में उस वंश के मनुष्यों में विवाद होने लगा। केलण जी ने मध्यस्थ होकर इस विवाद को शान्त कर दिया। उन्हों ने इस विवाद में सुजाग्रत नामक समाजा· वंशी का पक्ष लियाथा। वे उस मनुष्य को अपने साथ अपने मरोट गढ़ में लेगये। वहां जाकर वह मरगया तब केलणजी ने समस्त समाराज्य को अपने अधिकार में कर लिया। इससे उनका राज्य अत्यन्त विस्तृत होगया। उस समय भाटी राज्य की सीमा इस प्रकार थी। सिन्ध प्रान्त में देरावर आसनी कोट, फिरोहर, माथोला, मरोट, मुमण, वाहण, और सिन्धु नदी का समस्त पश्चिम प्रदेश पंजाब में गाड़ा नदी पर्य्यन्त।

महारावल केहर जी के अनन्तर उनके जेष्ट पुत्र १२८ लखमणजी सम्वत् १४५१ में महारावल पद पर अभिषिक्त हुये। उनके निम्न लिखित छः पुत्र हुये। वेरसी, रूपसी, राजधर, सादूल, कुम्भा, और अमरा। महारावल के द्वीतीयपुत्र रूपसी का पौत्र जैसल महा पराक्रमी पुरुष था। उस

ने एक समय दिल्ली में जाकर भागते हुए हाथी को दोनों हाथों से पकड कर हिला दिया। इसके इस अमानुषिक कार्य से प्रसन्न होकर दिल्लीके तत्कालीन सम्राट ने उसे इका(बीर) पद से विभूषित किया ; इस से इसकी सन्तति भी इका भाटी के नाम से विख्यात हुई। इस जातिके मनुष्य इस समय जोधपुर राज्य के फलोधी और पोकरण प्रदेशों में अधिकता से पाये जाते हैं।

महारावल लखमण जी के राजत्व काल में मेडता प्रदेश से एक ब्राह्मण स्वयमाविर्भूत (स्वतः पृथ्वी से निकली हुई) लक्ष्मीनाथ जी की मूर्तिको लेकर जैसलमेर आया। महारावल ने नवीन मन्दिर बनवाकर उस चमत्कारिक मूर्तिको सम्वत् १४९४ में बडी धूम धाम से प्रतिष्ठित किया।

महारावल के पृष्ठ भाग में एक अदृष्ट व्रण था। उन्हों ने उसकी चिकित्सा करवाने के लिये बडे २ वैद्य बुलवाये परन्तु कोई भी उनकी व्याधी को न मिटा सका। वे उस व्रण जनित पीडा से अत्यन्त कष्ट पाने लगे, यहां तक कि उनको अपना जीवन भी भारमय प्रतीत होने लगा। इसी प्रकार का व्रण दिल्ली के तत्कालीन बादशाह के पृष्ठ भाग में भी हो गया था, उसका इलाज करने के लिये भारद्वाज गोत्री देव ऋषि (राम रत्न) नामक प्रसिद्ध विद्वान् वैद्य पंजाब से दिल्ली को आया था। उसकी चमत्कारिक चिकित्सा से मरणोन्मुख दिल्लीपतिने पुनर्जन्म प्राप्त करके प्रत्युपकार में अपनि सुन्दर कन्या को उसके अति सुन्दर युवा पुत्र के साथ विवाह करके उस ब्राह्मण को अपना उमराव बनाना चाहा परन्तु वह सीधा सादा ब्राह्मण धर्म विपर्य्यय से भय भीत होकर उसी दिन रात्रिके समय एक ऊंट पर सवार होकर

भागता हुआ जैसलमेर चला आया। उसने यहां आकर महारावल को अपना परिचय दिया। महारावल ने उसे अपना पुरातन कुल व्यास की सन्तति समझ कर उसका बहुत कुछ आदर सत्कार किया और उसी से अपने असाध्य रोग की चिकित्सा करानी आरम्भ की।

अल्पकाल में ही उस पीयूषपाणि और क्रियाकुशल ब्राह्मण की चिकित्सा से रोगोन्मुक्त होकर महारावल ने उसको पाटव्यास पद से विभूषित किया। और उसके पुत्रका विवाह अपने कुल पुरोहित पइलाज की बगड़ी नामक कन्या से किया। देवरत्न के बगड़ी मेंसे पोपा, जूठा, नारायण और गदाधर नाम के चार पुत्र हुये। इन चारों की सन्तति के २५०० ढाई हजार घर जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर और किशनगढ़ के राज्य में निवास करते हैं। महारावल लक्ष्मण (लखमण) के परलोकवास के अनन्तर इनके ज्येष्ठ पुत्र १२९ वैरसी जी सम्वत् १४८६ में रावल पद पर अभिषिक्त हुये। उनके राजत्व काल में मण्डौर के अधिपति राठौड राव रिड़मल जी सीसोदिया गणों से चितौड़ में मारे गये, इससे सीसोदियों का मण्डौर पर अधिकार हो गया था: इसी कारण उनके जेष्ठ पुत्र जोधा जी राज्य भ्रष्ट होकर महारावल की शरण में आये। महारावल ने उन्हें बहुत कुछ आश्वासन देकर अपनी सुसज्जित सेना के साथ जोधपुर आक्रमण करने को भेज दिया। भट्टी सेना की साहायता से वीर जोधा जी ने अपने पैतृक राज्यका उद्धार किया और अपने सहायक महारावल की प्रशंसा में कृतज्ञता प्रकट करते हुये निम्नलिखित दोहे कहे थे:—

दोहा—सुपनह वहाँ गढ बैरसी, पिड अरिदेण प्रबोध।

राव मण्डोवर राखियो, जे शरणागत जोध॥ १॥

तवे कमध लखमण सुतन, नरपति माड़ नरेश।

निज ऊपर कर जोधने, दीध मण्डोवर देश॥ २॥

महारावल बैरसी जी ने अपनी राणी की स्मृति मे सूर्य का मन्दिर बूलीसर और राणीसर नामक कूप गढ में बनवाये। इन्हों ने दश वर्ष पर्य्यन्त राज्य किया। इनके चाचाजी, ऊगोजी, मेलोजी और वणीरजी नामक चार पुत्र थे। इनके परलोक वास के अनन्तर इनका ज्येष्ठ पुत्र चाचोजी १३० जैसलमेर के राज सिंहासन पर विराजमान हुये। इन्हों ने दश विवाह किये। इनके ईडर की राज़बाला में से देवीदास नाम का एक पुत्र हुआथा। वे अभिषिक्त होने के पश्चात् ग्यारवां विवाह करने के लिये अमरकोट को गये। और वहीं पर विवाह के अन्तर स्वदेश को लौटते हुये सोढा जाति के राजपूतों से कपट पूर्वक दो सौ भाटियों के साथ मारे गये। उन्हों ने केवल दश वर्ष ही राज्यका आनन्द भोगा।

महारावल के मृत्यु समाचारों को सुनकर उनके एक मात्र पुत्र देवीदास ने अपने सर्व सामन्तों के आगे शपथ ली कि जब तक मै अपने पितृहन्ताओं को उचित फल न दे दूं तब तक राज्य ग्रहण न करूंगा। उसने तुरन्त ही प्रवल सेनाके साथ अमरकोट पर आक्रमण कर के अमरकोट के अधिपति सोढा राणा मांडण को पाच सौ सोढों के साथ मार कर अपने पिता का बदला लिया। वे अमर कोट की सर्व सम्पति को लूट कर जैसलमेर ले आये। उन्होने इस विजय की स्मृति में सोढा राणा के भव्य प्रसाद की ईंटों को उंठों पर लदवाकर अपने देरासर नामक राजप्रासाद में लगवादीं।

इस के पश्चात् सम्वत् १५१२ में १३१ देवीदास ने अपना राजतिलकोत्सव मनाया। इन्होंने १५ विवाह किये थे। इनके इन सब राणियों मे से निम्न लिखित आठ पुत्र हुये थे। जैतसिंह घड़सी, शातल, पातल, ठाकरसी, रामू और दूदा। इनमेंसे द्वितीय और चतुर्थ पुत्र का वंश नहीं चला। अवशिष्ट पुत्रों की सन्तति अपने पिताके नामसे पुकारी जाती है। इनके राजत्व कालमें बलोचों और चन्नों ने उपद्रव मचाना आरम्भ किया। महारावल ने सैन्य समूह के साथ स्वयं संग्राम भूमि में पधार कर शत्रु गण के तेरह सौ वीरों को यमसदन भेजा।

समर से लौटते हुये महारावल ने कोटड़े और बाड़मेर के उद्धत सामन्तों को भी उचित शिक्षा देकर अपने आधीन करलिया। उन्होंने महेचा जाति के स्वाधीन सामन्त को पराजित करके उसकी कन्या के साथ विवाह करलिया। वहां पर उनको यह समाचार मालूम हुआ कि राव जोधा जी के वीर पुत्र बीका जी ने पूगलपति भाटी सामन्त के सीमान्त प्रदेश में कोडमदेसर नामक तालाव के पास नवीन दुर्ग बनवाना आरम्भ किया है, तब वे वहीं से अपने सेना के साथ उक्त स्थान पर पधारे। वीर बीकाजी ने विजयोन्मत्त महारावल का सामना करना उस समय उचित न समझ कर वहां से अपने नवीन दुर्ग को खाली करके भाग गये। महारावल ने अर्ध-निर्मित दुर्गको भूमिसात् करके उसके मुख्य द्वारके कपाट और तुलाट लेकर स्वदेश को प्रस्थान किया जाते समय उन्होंने अपने प्रधान सामान्त पूगलपतिको भाटी राज्य की सीमा में किसी अन्य जाति के राजपूत को दुर्ग न बनवाने देने के लिये कठोर आज्ञा प्रदान की। वे उस द्वार कपाट को वर्सलपुरके दुर्ग में लगवाकर और तुलाटको अपने साथ लेकर जैसलमेर को पधारे।

तत्कालीन पूगलपति ने अपनी कन्या का विवाह वीका जी से किया था इसी से उसने, अपनी सीमा में दुर्ग बनाते हुये, वीर वीका जी को मना नहीं किया। महारावल के लिखने पर पूगल राव उनको विश्वास देते रहे कि मैं आपके आज्ञानुसार दुर्ग नहीं बनवाने दूंगा, परन्तु उसने प्रेम के वशीभूत होकर अपने जामाता वीर वीकाजी को कुछ भी नहीं कहा। इन्होंने सम्वत् १५५३ में इस पार्थिव शरीर को छोड़ कर वैकुण्ठ वास किया और उसी वर्ष सम्वत् १५५३ में इनके ज्येष्ठ पुत्र जैतसिंह जी राजसिंहासन पर विराजमान हुये।

१३२ महारावल जैतसिंह अकर्मण्य और शान्तिप्रिय राजा थे। इनकी सौम्य प्रकृति से लाभ उठाकर भाटी सामन्त सोढे वाडमेरिये आदि महारावल के राज्य में अनेक प्रकार के उपद्रव औरलूट खसोट करने लगे। एक दिन इन उपद्रवियों ने राजकुमार की सवारी के घोड़े को चुरा लिया परन्तु महारावल ने उनको कुछ भी दण्ड नहीं दिया। महारावल की इस प्रकार की शान्ति प्रियता से उनका द्वितीय पुत्र लून करन अत्यन्त ही दुःखी हुआ। वह क्रुद्ध होकर इन उपद्रवी सामन्तों को दमन करने के लिये कंधार के अधिपति से सहायता प्राप्त करने की अभिलाषा से अफगानिस्तान को चला गया।

उनकी अनुपस्थिति में वीकानेर की सेना ने जैसलमेर पर आक्रमण किया। वह अपने सेनापति के साथ खास राजधानी से तीन कोश राजवाई तक अप्रतिहतगति से चली आई। महारावल जी उस समय वाडी नामक बाग के तालाब का अपने नाम से एक बड़ा भारी बंध बँधवा रहे थे। वे उसका निरिक्षण करने के लिये वहाँ पर बहुधा जाया करते थे। वीकानेर की सेना ने समग्र प्रदेश को लूट लिया था परन्तु

जब वह राजधानी को भी लूटने लगी तब महारावल ने बड़ी कठिनता से उस का सामना किया। उनके सामना करने पर राठौड सेना मैदान छोड़ भागी और बीकानेर आकर ठहरी। इस घटना के पश्चात् थोड़े ही दिनों में महारावल का लोकान्तर वास हो गया। उनके नौ पुत्र थे उनमें से ज्येष्ठ पुत्र कर्मसी पिता के पद पर अभिषिक्त हुआ। वह एक पल भर भी राज्य न करने पाया था कि उसका लघु भ्राता लूनकरन एक सहस्र कधारियों के साथ जैसलमेर को लौट आया। वह उन यवनों की सहायता से कर्मसी को राज्य सिंहासन से उतार कर अपने आप राज गद्दी पर बैठ गया।

१३३ महारावल लूण करन ने सम्वत् १५८६ में जैसलमेर के राज्य पर अपना अधिकार किया। इनके नव पुत्र और तीन कन्यायें हुईं। उन्होंने अपनी उमादेवी नामक कन्या का विवाह जोधपुर के तत्कालीन राव मालदेव के साथ किया। महारावल ने अपनी कन्या को बहुत से दास दासियों के साथ विदा किया। उन दासियों में से भारमली नामकी अत्यन्त स्वरूपवती दासी पर माल देव जी मोहित हो गये। उमादेवी ने अपने पति को अन्यासक्त देखकर उसी समय आजन्म ब्रह्मचारिणी रहने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली। उसने प्रतिज्ञा पर दृढ़ रह कर अपने पति के लोकान्तरित होने पर उनके शव के साथही अपने सुन्दर शरीर को अग्नि में भस्म कर डाला। उनके इस " न मानिनी ससहतेऽन्य सङ्गमं ' अद्भुत मान की कथा समस्त राजपूताने में प्रचलित है।

महारावल ने बारह विवाह किये थे, उन सब महारानियों में से मालदे आदि उन के नव पुत्र हुये। इन्हों ने सबसे

प्रथम अपने पिता के आरम्भ किये हुये वन्धके कार्यको सम्पूर्ण किया। यह बन्ध इतना ऊंचा और ऐसे २ अनघड़ पत्थरों से बनाया गया है कि जिसको देख कर अत्यन्त आश्चर्य होता है। इन्हो ने इस वन्धका नाम अपने पिता की स्मृति में जैतवन्ध रक्खा है। बहुत काल पर्य्यन्त यवनों से लड़ने भिडने से तथा उनके साथ संसर्ग रखने से भाटी जाति की वहुत सी शाखायें आचार विचार से भ्रष्ट हो गईं थीं। नीति विशारद महारावल ने अपने शास्त्रवेत्ता पाट व्याससे धर्म्मव्यवस्था लेकर इस वन्ध की प्रतिष्ठा के उपलक्ष्य में अपने जातीय बान्धवों को संस्कृत करने के लिये एक वृहत् याज्ञका आयोजन किया और धर्म्मभ्रष्ट समस्त यादवों को सूचित कर दिया कि नियमित तिथि पर जो इस महायज्ञ में सम्मिलित हो जायगा उसे उसी समय वेद मन्त्रों से संस्कृत करके स्वजाति में मिला लिया जायगा। महारावल के इस आदेशसे सिन्धु प्रान्त में रहने वाले असंख्य भाटीगण आकर और इस याग में सम्मितिल हो कर स्वजाति में शामिल हो गये।

महारावल ने उसी बंध के पृष्ठ भाग में बाड़ी नामक बड़ा बाग लगवाया उस बागके आम्र वृक्षों में से एक वृक्ष राव मालेद जी अपने साथ जोधपुर (मण्डोर के बागीचे में लगवा ने को) ले गये थे। सम्वत् १६०७ में कन्धार के अमीर राज्य च्युत हो कर महारावल के आश्रयमें रहे। महारावल ने उसको अपना पूर्व सहायक समझ कर उसका अच्छा आदर सत्कार किया। उसको रहने के लिये कृष्णघाट नामक उपवनभूमि प्रदान की गई। यह बहुत दिनों तक वहां रह कर राज्य की परिस्थित से पूरा जानकार हो गया। उसने देखा कि भाटी जाति अत्यन्त सरल चित्त है; और वहां पर किसी भी प्रकार

का सैनिक प्रवन्ध नहीं है। ऐसी अवस्था में अपने अनुयायियों के साथ दुर्ग में प्रवेश करके उसको अपने अधिकार में कर लेना चाहिये।

जैसलमेर के सामन्त लोग बहुत दूर अपने अधिकृत प्रदेशों में निवास करते हैं और वहां पर सुसगठित वेतन भोगी सेना रखने का रेवाज नहीं है क्योंकि युद्ध समय समस्त भाटी जाति स्वदेश की रक्षा के लिये महारावल के बुलाने पर आ जाती है, विना युद्ध वहां पर कभी किसी सैनिक की आवश्यकता नहीं पडती। कंधारका अमीर (अली खां) अपनी अल्प सख्यक सेना और कुटुम्ब के साथ कई मास से वहां रहता था और वह महारावल जी का परम मित्र भी था, इससे उसके विषय में किसी को किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं था। परन्तु यवन जाति से राजपूतों ने अपने सीधेपन के कारण कई वार धोखे खाये हैं। इस बात से भारत का प्रत्येक इतिहासज्ञ सम्यक्तया परिचित है। एक समय महारावल अपने अन्तःपुर में थे और उनका कुमार अपने सहचरों के साथ उपवन की सैर करने गया था। ऐसे समय उस दुर्बुद्धि यवन ने महावल से कहला भेजा कि मेरी वेगमें आपके अन्त. पुर में आकर आपकी महाराणियों से परिचय प्राप्त करना चाहती हैं। सरल चित्त महारावल ने उस दुष्ट यवन के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। महारावल की आज्ञा पातेही बहुत से स्त्रीवेषधारी यवन सशस्त्र दुर्ग में घुस आये। परन्तु अन्त: पुर के प्रथम द्वार पर आतेही दुष्ट यवनों का समस्त भेद महारावल को मालुम हो गया। महारावल एक सौ पार्श्वानुचर बहुत से अंग-रक्षक भाटी, तथा दुर्ग में रहने वाले ब्राह्मण, चारण, राजकर्म्मचारी आदि समस्त मनुष्यों को साथ लेकर उन दुष्ट यवनों से लड़ मरे।

इस घटना को सुन कर राज कुमार भी अपने दल बल सहित आ पहुँचा; उसने अपने साथ कंधार से प्रथम लाये हुये सैनिकों की सहायता से अली खां को उसके समस्त अनुचरों के साथ यमलोक भेज दिया। (१३४) कुमार मालदेव जी अपने पिता की उर्ध्वदैहिक क्रिया के पश्चात् सम्वत् १६०७ में पैतृक राज्य के अधिकारी हुये। महारावल मालदेव जी के हर राज, भवानीदास, खेतसी, नारायण, शेष मल्ल, नेतसी, डूंगरसी और पूर्ण मल्ल नामके आठ पुत्र हुये। इनमें से डूंगरसी की सन्तान बीकानेर राज्य के पांचू गाव पर अभी तक अपना अधिकार रखती है।

महारावल मालदेव ने ११ वर्ष राज्य किया। उनके परलोक वास के अनन्तर उनके ज्येष्ठ पुत्र (१३५ हरराज जी) सम्वत् १६१८ में महारावल पद पर अभिषिक्त हुये। इनके भीम जी, कल्याण जी, भारवर सिंह जी और सुलतान सिंह जी नाम के चार पुत्र और गंगा कुमारी, चम्पा कुमारी आदि तीन कन्यायें उत्पन्न हुईं। महारावल ने अपनी बड़ी कन्या गगा कुँवरी का विबाह बीकानेर के महाराज रायसिंह जी से तथा छोटी का उनके छोटे भाई पृथ्वी राज से किया। राजकुमारी गंगा कुँवरी ने बिकानेर जाते समय अपने पिता महारावल से जैसलमेर में रहने वाली बहुत जातियों को मांग कर अपने साथ ले लिया। कालान्तर में उनकी सन्तति से विकानेर परिपूर्ण होकर साधारण जन पद से नगर रूप में परिणित हो गया। इनमें से कुंभार, सुथार, मोदी आदि बहुत सी जातियां अपने प्राचीन स्वदेश के पूजनीय नाम को अपनी जाति के आगे लगाकर अपना अनवगीत परिचय देती हैं। इस राज कुमारी के साथ जैसलमेर से पुष्किर ब्राह्मण जाति का एक

आचार्य भी आया था। वह ज्योतिष विद्या का पूर्ण विद्वान् था। भाटी राज कुमारी ने बड़े अनुरोध से अपने पिता महारावल से उसको मांग लिया था। उस ब्राह्मण की सन्तति ने अपने ब्रह्मतेज से महाराज राठोड़राज राय सिंह जी की सन्तान के वहुत से मनोरथ पूर्ण किये थे। आचार्य (आचारज) जाति के अनल्पमहोपकारो से सन्तुष्ट होकर धर्मिष्ट राठौड़ाधिपति ने अपने राज्य का अर्द्धांश उनको समर्पण करना चाहा परन्तु ब्रह्मतेजोवलसमन्वित आचार्य-गण ने राजसी ठाठ को अनर्थ का मूल समझ करकेवल अपनीं भावी सन्तति के निवास करने योग्य भूमि को ही अङ्गिकार करके महाराज की वदान्यता की भूरि २ प्रशसा की। इस समय इस आचार्य जाति के बीकानेर में आठ सौ घर हैं। उनमें से कोई २ इस समय भी राज्य के निम्न श्रेणि के कार्यों में नियुक्त हैं परन्तु अधिकांश श्ववृत्ति (नौकरी पेशा) से ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

महारावल ने अन्यान्य राजपूत राजन्यवर्ग को परम प्रतापशाली अकवर की सेवा में उपस्थित होते देख कर अपने कनिष्ट पुत्र सुरतान सिंह को सम्राट् की सभा में प्रेषित किया। राव मालदेव के पुत्र चन्द्रसेन ने जैसलमेर के पोहकरण औ फलौधी प्रदेशों पर आपना अधिकार कर लिया था। सम्राट ने कुमार सुरतान की वीरता से सन्तुष्ट हो कर उक्त दोनों प्रदेश भाटी राज के अधिकारमे पुनः सम्मिलित करवा दिये।

महारावल ने दुर्ग के चत्वर से राजप्रासादों को जाने वाले मार्ग में प्राचीन प्रासाद की सोपान पंक्ति के उपरी भाग में अपने नाम से एक नवीन प्रासाद वनवाया, यह प्रासाद इस समय

"हर राय जी का मालिया" के नाम से अभी तक प्रसिद्ध है। उन के देहान्त के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र १३६ भीमसिंह सम्वत् १६३४ में महारावलपद पर अभिषिक्त हो कर जैसलमेर के सुशासकों में से एक हुये हैं। यह अत्यन्त प्रतापशाली राजा थे। इन्हों ने अपने प्रबल प्रताप से दिल्लीश्वर को भी परमसन्तुष्ट कर दिया था। नवरोजा की अपमानजनक प्रथा को बन्द करवाने का सौभाग्य किस महाराज ने प्राप्त किया था? यह बात अभी तक निर्विवाद सिद्ध नहीं होने पाई है परन्तु जैसलमेर की जनता यवन राज्य से इस जघन्य कार्य को बन्द करवाने का श्रेय महारावल भीम को ही प्रदान करती है।

जैसलमेर में बीकानेर के अनुज पृथ्वीराज का कहा हुआ इस आशय का दोहा अभी तक सर्वत्र प्रचलित है।

दोहाः— दूजा राजा शाहरे, कर में ले दारी।
भाटी भीम छोड़ायदी, नवरोज नारी॥

एतद्देशीय जतना की यह उक्ति कहां तक सत्य है इस का निर्णय राजपूताने के इतिहासज्ञ करेंगे, परन्तु इस मे कोई सन्देह नहीं कि महारावल भीम अत्यन्त साहसी राजा थे। उन्हों ने समीपवर्ती राजाओं के प्रदेशों पर आक्रमण कर के प्रचुर द्रव्य एकत्रित किया था। उन्हों ने पचास लक्ष मुद्रा से अपने विध्वस्त दुर्ग का जीर्णोद्धार किया। इन के नाथू नामक कुमार उत्पन्न हुआ था परन्तु वह महारावल की मृत्यु के समय केवल सात वर्ष का ही था। उसको, महारावल भीम के कनिष्ठ भ्राता १३७ कल्याणसिंह ने फलोधी नामक प्रदेश में विषप्रयोग से मार कर सम्वत् १६८० मे अपने आपको महारावलपद पर अभिषिक्त किया। नाथू की माता महाराज बीकानेर की कन्या थी। वह

दुःखित हो कर वीकानेर चली गई। वीकानेर के तत्कालिन महाराज ने इस अन्याय से क्रोधित हो कर अपनी तलवार के जोर से जैसलमेर के अधिकृत प्रदेश फलौधी को अपने राज्य में मिला लिया।

भ्रातृपुत्रहन्ता कल्याण के इस दुष्ट आचरण से समस्त प्रजा उस से अत्यन्त असन्तुष्ट हुई। यहां तक कि उस की सत्य बात पर भी प्रजा विश्वास नहीं करती थी। उस समय सर्व-साधारण में यह कहावत प्रचलित हो गई थी.—"मन जाणे कल्याणरो अजां मंडाई अध । इस ने दश वर्ष राज्य किया। फिर इस का पुत्र (१३८) मनोहर दास राजसिंहासन पर वैठा। यह वड़ा ही प्रतापी राजा था। इस ने अपने वाहुवल से, अपने पिता से खोये हुये समस्त राज्य पर अपना पूर्ण अधिकार जमाया। इस के राज्य का विस्तार आइने अकवरी और जैसलमेर के प्राचीन इतिहास को देखने से इस प्रकार मालुम होता है:—जैसलमेर से दक्षिण की तरफ़ जोधपुर के समीपवर्ती हरसानी प्रदेश से भी आगे-तथा पश्चिम में एक सौ पचीस कोस पर्य्यन्त अर्थात् सखर और रोहिड़ी प्रदेश तक उत्तर में भी १२५ कोस पर्य्यन्त अर्थात् देरावल (वहावलपुर) पूगल आदि प्रदेश और पूर्व में वाड़मेर तक। इन्हों ने अपनी महाराणी के नाम से "वाड़ी" नामक वाग में मानसरोवर नामकी सुरम्य वाटिका वन वाई और दुर्ग के कच्चे वुर्जों को पक्का वनवाया। इन की वीरता और दुर्ग की दृढता तथा सुन्दरता में निम्नलिखित गीत सर्वत्र प्रचलित है:—संसार कहे पतसाह सॉभलो सिरपाकडे निको समसेर। आज वनै दुनियान ऊपरे मानक वरनै जैसलमेर ॥ १ ॥ कवेरा गुर वड़गात कलाकत जगपुर नयण पतीणा जोय। गोर हरे

सारीखोरन को गढ़ नृप मनहर सारीखन कोय ॥२॥ वाँह प्रलव जोध्र अतुली वल मोजसमद जादम मनमोट। मान-मञ्जुर सिरहर मडली का कोटा सिरै तिखूंणा कोट ॥३॥ खाग त्याग मीढता नव खड जादम सारीखो जेसाण। मनहर तणा भुजा डड मोटा मोटा बुरजों तंणा मडाण ॥ ४ ॥ इन के पर-लोकवास के अनन्तर इन का पुत्र १३६ रामचन्द्र राजसिंहा-सन का अधिकारी हुआ परन्तु वह वड़े ऊधमी स्वभाव का था। इस से समस्त सामन्त और प्रजामण्डल ने सहमत हो कर इस को राज्यासन से अलग करने का विचार कर के महारावल मालदेव के तृतीय पुत्र खेतसी जी के पौत्र होन हार कुमार सबलसिंहजी को रावलपद पर अभिषिक्त करने का विचार किया। कुमार सबलसिंह अति वीर और साहसी यो-द्धा थे। वे अपने मामा-किशनगढ़ के महाराज की सहायता से रावलपद प्राप्त करने के पहले सम्राट् अकवर की सेना में उच्च पद पर नियुक्त हो कर शाही कोष को लूटने वाले अफ-गानों को दमन करने के लिये पेशावर गये थे।

उन्हों ने अफगानों को पराजित कर के शाही कोष का समस्त द्रव्य सम्राट् को वापिश ला दिया। उन की इस सेवा से सन्तु-ष्ट हो कर सम्राट् ने जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह को रावल रामचन्द्र के स्थान पर अध्यवसायी और कर्मण्य सबल-सिंह को रावलपद पर अधिष्ठित करने के लिये आज्ञापत्र प्रदान किया। रावल रामचन्द्र की उद्दण्डता से प्रजावर्ग पहले ही से असन्तुष्ट था इस से राठौड़ राज को रामचन्द्र को रावल-पद से अलग करने में विशेष कष्ट न उठाना पड़ा। परन्तु नीति-विशारद राठौडाधिपति ने अपने स्वार्थ साधन के लिये इस अवसर को हाथ से न जाने दिया। उन्हों ने तुरन्त ही अपने

सामन्त नाहर खाँ की अधीनता मे एक वलिष्ठ राठौडसैना
सुसज्जित कर वाई और कुमार सवलसिंह से इस प्रकार का
प्रतिज्ञापत्र लिखवा लिया कि जैसलमेर के सिंहासन को हस्त-
गत करवाने के लिये समस्त पौकरण प्रदेश परितोपिक रूप मे
हम आप के सामान्त नाहर खां को देदेगे। राजनीति से अन-
भिज्ञ वीर सवलसिंह ने, रामचन्द्र की उद्दण्डता से विरक्त
प्रजा के प्रेम से तथा सम्राट् के महोपकार के प्रभाव से स्वतः
प्राप्त हुये रावलपद को राठौडराज की सहायता से ही प्राप्त
हुआ समझ कर, नाहर खाँ को समस्त पौकरण प्रदेश परितो-
पिक रूप मे प्रदान करने मे कुछ भी-आगा पीछा न किया।

कुमार सवलसिंह ने जैसलमेर पहुँच कर अल्प ही समय
में वहा की परिस्थिति से अच्छी तरह परिचय प्राप्त कर
लिया। रावल रामचन्द्र के अन्याय तथा औद्धत्य से पीड़ित
प्रजा वर्ग तथा रघुनाथ और दुर्गादास आदि राज्य का प्रधान
कर्मचारी मण्डल उन की अभ्यर्थना के लिये पहिले ही से प्रस्तुत
था। उन सब ने सम्मिलित हो कर सुसिल और सच्चरित्र
कुमार को सम्वत् १७०७ की कार्तिक कृष्णा अष्टमी को ठीक
मध्यान्ह के समय १४० कुमार सवलसिंह को रावलपद
पर अभिषिक्त कर दिया। नवीन महारावल ने अपने पूर्वज
महारावल श्री मालदेव के तृतीय पुत्र खेतसिंह की सन्तति की
राज्य प्राप्ति की तिथी की स्मृति के उपलक्ष मे प्रति वर्षकी
कार्तीक कृष्णा अष्टमी के मध्यान्ह काल में अपनी कुल देवी की
पूजा, शस्त्र पूजन तथा गीत नृत्यादि से महोत्सव मनाना
आरम्भ किया। महारावल की इस पूजनविधिको उन के
उत्तराधिकारी उक्त तिथि पर अभी तक करते आ रहे है।

नवीन महारावल ने सामन्तगण और प्रजावर्ग की सहानुभूति से अनायास ही रावलपद प्राप्त कर लिया था। उन को राठौड़ सेना की सहायता की आवश्यकता ही नहीं पड़ी महारावल रामचन्द्र ने सामन्तगण और प्रजावर्ग को नवीन रावल का पक्षपाती तथा देश काल की परिस्थिति को देख कर विना युद्ध के ही राज्य सिंहासन को छोड़ कर अपने पूर्व पुरूषों की प्राचीन राजधानी देरावल को प्रस्थान किया। उन्हों ने देरावल को अपनी राजधानी बना कर उस के आस पास का समस्त प्रदेश जोहियों से छीन कर अपने अधिकार में कर लिया तथा नवीन महारावल के प्रधान सामन्त बन कर उन की वश्यता स्वीकार कर ली। सिंहासनच्युत महारावल रामचन्द्र की सन्तति का संक्षिप्त विवरण देना परमावश्यक है:-

महारावल रामचन्द्र।
|
माधो सिंह,
|
किशन सिंह,
|
राय सिंह।

रावल रायसिंहजी से शिकारपुर (सिंध) के दाऊद पौत्रे फतह खां ने देरावल छीन कर अपने अधिकार में कर लिया। यवन फतह खां से पराजित रावल रायसिंह ने महाराज बीकानेर का आश्रय लिया। तत्कालीन बीकानेराधिपति ने महारावल श्री रामचन्द्रजी के वंशज को राजोचित उदारता के साथ अपना कर अपने अधिकृत राज्य का गड़ियाला

प्रदेश उन को परम्परा के लिये प्रदान कर दिया। रावल राय-सिंह जी के उत्तराधिकारी

रावल रायसिंह जी
|
रघुनाथ सिंह जी
|
जालम सिंह जी
|
भोम सिंह जी
|
भभूत सिंह जी
|
नथू सिंह जी
|
वूलीदान जी।

वूलीदान जी के संतति हीं इस समय गडियाला के रावल जी के नाम से प्रसिद्ध है।

महारावल सवलसिंह के हस्ताक्षर से अङ्कित आज्ञा-पत्र को ले कर नहर खां जोधपुर की राठौड़ सैना के साथ पोकरण जा पहुँचा। राठौड़सैनापति ने दुर्गरक्षक भाटी वीर को नवीन रावल का आज्ञापत्र दिखलाया। परन्तु दुर्गरक्षक ने अपने पास राजधानी (जैसलमेर) से किसी प्रकार की सूचना न मिलने से दुर्ग को खाली

करना अस्वीकार किया। तब राठौड़ सेना ने घेरा डाल दिया कई दिन तक तो वीर भाटी उस दुर्ग की रक्षा करता हुआ राठौड़ सैना का सामना करता रहा, परन्तु जैसलमेर में नवीन राजा के राजसिंहासन पर विराजमान होने के कारण उस समय गृह विवाद उपस्थित था अतः दुर्गरक्षक जब किसी भी प्रकार की सहायता प्राप्त न कर सका तब वह वीर दुर्ग से बाहिर निकल कर अपने अवशिष्ट ग्यारह अनुयायियों के साथ बलिष्ठ राठौड़ सेना से भयंकर संग्राम कर के सूर्य्यमण्डल को भेदन करता हुआ स्वर्गधाम पहुँच गया। उस वीर का नाम प्रतापसिंह था और वह महारावल जैतसिंह के पुनीत वंश में उत्पन्न हुआ था। उस की स्मृति में पोहकरण के दुर्ग-द्वार के बहिर्भाग में बना हुआ एक चतुष्कोण मण्डप आज तक भी उस की अनुपम वीरता का स्मरण कराता हुआ भाटी सन्तान के जीर्ण शीर्ण कलेवर में नवीन रक्त का संचार करता है।

महारावल सबलसिंह के परवर्ती जितने महारावल हो गये हैं उन में से किसी ने अपने राज्य की सूची मात्र पृथ्वी भी अन्य राजा के अधिकार में न होने दी थी। परन्तु इन नवीन महारावल से राठौड़ाधिपति महाराज जसवन्तसिंह ने राज-नैतिक चाल से उपरोक्त प्रदेश को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। महारावल सबलसिंह जी के निम्नलिखित सात पुत्र हुये—रत्नसिंह, अमरसिंह, राजसिंह, महासिंह, माधोसिंह, भावसिंह और बाकीदास। महारावल के ज्येष्ठ पुत्र उन की विद्यमानता में ही इस असार संसार को छोड़ परलोक-वासी हो गये थे इस से उन के द्वितीय पुत्र १४१ अमर-सिंह उन के परलोकवास के अनन्तर सम्वत् १७१७ में राजसिंहासन पर विराजमान हुये।

महारावल सवलसिंह के ज्येष्ठ पुत्र की सन्तान जैसलमेर के कणोध ग्राम पर अभी तक अपना परम्परागत अधिकार रखती है। उन के तृतीय पुत्र राजसिंहजी जोधपुर में मारे गये। उन के चतुर्थ पुत्र महासिंह मेवाड के तत्कालीन महाराणा के आश्रय में चले गये थे, उन की सन्तान अभी तक मेवाड प्रदेश के मोही गांव पर अधिकार रखती है और वहीं पर रावलोत नाम से पुकारी जाती है। उन के कनिष्ठ पुत्र बांकीदास के वंशज जैसलमेर के समीपवर्ती गाँव पीथल के अधिपति हैं और महारावल की सन्तान होने से रावलोत कहलाते हैं।

महारावल अमरसिंहजी महावीर और अति साहसी राजा थे। उन के राजसिंहासन पर विराजमान होते ही सिन्ध प्रान्त के वलोचों और चन्नों ने विद्रोह मचाना आरम्भ किया। वहुत से वलोचो ने चन्नो के साथ मिल कर इन के अधीनस्थ रोहड़ी प्रदेश पर आक्रमण किया। दुर्गरक्षक भाटी सरदार ने अपनी सेना के साथ उन का सामना किया परन्तु भाटीगण अल्पसंख्यक थे इस से वलोचों के प्रवल वेग को वे न रोक सके। उन्हों ने यवनगणका प्रावल्य देख कर दुर्गस्थ महिलाओं को सती होने की सम्मति दी।

भाटी महिलाओं ने रोहडी के उत्तुङ्ग पर्वत प्रदेश पर अपने पार्थिव शरीर को अग्नि में आहुति दे कर पतियो से पहिले ही अमरत्व प्राप्त किया। आज तक रोहड़ी की वह उत्तुङ्ग पहाड़ी 'सतियों की पहाडी' के नाम से प्रसिद्ध है और वहां पर अभी तक भी प्रति वर्ष चैत्र शुक्ला-पूर्णमासी को उन पुनीत महिलाओं की स्मृति में आर्यजनता उन की अर्चना करने के लिये सम्मिलित

हो कर परम महोत्सव मनाती है। वीरमहिलाओं के स्वर्गधाम पहुंचते ही वीर भाटी गण दुर्ग से निकल तथा अपने २ हाथों में नग्न तलवारें ले कर प्रतिपक्षियों को महाकाल की भांति दिखलाई देते हुये समर क्षेत्र मे कूद पड़े। दोनों ही तरफ से प्रवल आक्रमण होने लगा। एक २ कर के प्रत्येक भट्टी वीर बहुसंख्यक यवनों को मार कर वीर गति को प्राप्त होने लगा।

इसी समय नवीन महारावल अमरसिंह जी भी अपनी सुसज्जित सेना के साथ समर क्षेत्र में आ पहुँचे। अपने स्वामी को आया हुआ देख कर भाटी सेना द्विगुणित उत्साह से लडने लगी। अब तो शत्रुगण के पैर युद्धभूमि से उखड़ने लगे परन्तु महारावल ने अपनी विशाल सेना से भागते हुये यवन गण को चारों तरफ से घेर कर उस का सर्वनाश कर दिया। विजयी महारावल अमरसिंह की सेना में विजय का नगाडा वजने लगा। उन्हों ने इस विजय के पश्चात् बहुत वर्ष तक वहीं निवास किया।

महारावल ने सब से प्रथम अपने प्राचीन वखर दुर्ग को वहां पर रह कर जीर्णोद्धार करवाया और सिन्धु नदी में से अपने नाम से अमरकस नामका वाघा (नाला) निकलवाया। उन्हों ने अपने नाम से अमरशाही सेर अपने राज्य भर में प्रचलित किया। यह सेर कलदार ६५) भर का है और अभी तक रोहड़ी सक्खर और जैसलमेर में प्रचलित है।

प्रवल पराक्रमी महारावल अमरसिंह से पूर्ण रूप से पराजित हो कर यवनगण ने उन के साथ सन्धि कर ली। उस समय के सन्धि विपयिक दोहे से महारावल की उत्तर पश्चिम की राज्यसीमा का

विस्तार अच्छे प्रकार मालुम हो सकता है। दोहा इस प्रकार है:—

सखर भखर रोहड़ी साकोटी सीयां।
ओली रावल अमरसी पैली भर मीयां॥

जब महारावल सिन्ध प्रान्तान्तर्गत राज्य के सीमान्त प्रदेशों में शान्ति स्थापित कर के जैसलमेर को लौट रहे थे तब उन के सामन्त प्रदेश वीकमपुर के अधिपति सुन्दरदास और दलपतिसिंह ने बीकानेर राज्य के सीमान्त प्रदेशों पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। उन्हों ने अपने अनुयायियों के साथ बीकानेर के जभ्रू ग्राम को लूट लिया और जला दिया। भाटी सामन्तों के इस अन्यायाचरण से जभ्रू ग्राम के तत्कालीन अधिपति कांधलोतगण ने अत्यन्त क्रोधित हो कर उसी समय अपने दलबल के साथ जैसलमेर राज्य में लूट खसोट मचादी। कॉधलोतों की उद्दण्डता को दमन करने के लिये भाटी सामन्तों ने एकत्रित हो कर भयंकर संग्राम करना आरम्भ कर दिया। उन्हों ने, भाटी राज्य के बहुतसे समृद्ध नगरों को लूट कर प्रसन्नतापूर्वक लौटते हुये राठौड़ों पर प्रबल आक्रमण कर के उन के दो सौ वीरों को स्वर्गधाम पहुचा दिये, और उन का समस्त द्रव्य छीन लिया। अवशिष्ट राठौडगण पराजय से लज्जित हो कर अपने देश को भाग गये।

राजधानी (जैसलमेर) में पहुच कर महारावल अमरसिंह ने अपने सामन्तों की विजय के समाचारों को सुन कर अत्यन्त हर्ष प्रकाशित किया। उस समय बीकानेर के महाराज अनूपसिंह जी दिल्लीश्वर की सेवा में नियुक्त हो कर भारत के दक्षिण प्रदेश में थे। वहां पर वे अपने सामन्तों के

पराजय के समाचारों को सुन कर अत्यन्त क्रोधित हुये। उन्हों ने उसी समय अपने अधिनस्थ शस्त्रधारी प्रत्येक राठौड़ राजपूत को भाटिया से बदला लेने के लिये संग्राम भूमि में उपस्थित होने की कठोर आज्ञा अपने प्रधान मंत्री को प्रदान की। महाराज की आज्ञा पा कर मंत्री ने समस्त राज्य में ढिंढोरा पिटवा दिया! पूर्व पराजय से अपमानित राठौड़ वीर अपने हाथ में तलवार ले कर और सम्मिलित हो कर भाटी राज्य की सीमा पर एकत्रित होने लगे। क्रोधित महाराज अनूपसिंह ने अपनी राठौड़ सैना की सहायता के लिये बहुत-सी यवन सेना के साथ हिसार के सेनापति को भी राठौड़ सेना में सम्मिलित होने के लिये प्रेषित कर दिया।

इस प्रकार राठौड़ सेना के, निज महाराज द्वारा उत्साहित हो कर जैसलमेर पर आक्रमण करने को, आगे बढ़ने का समाचार सुन कर युद्धविद्याकुशल महारावल अमरसिंह ने भी अपने प्रधान सामन्त वीकमपुर और वर्सलपुर के अधिपतियों के नेतृत्व में शस्त्रधारी समस्त भाटी राजपूतों को एकत्रित कर के राठौडों के अपनी सीमा में आक्रमण करने से पूर्व ही उन्हों ने अपने सैन्य समूह के प्रबल वेग से राठौड़ राज्य के सीमान्तप्रदेशों को लूटना आरम्भ कर दिया। पूगल के राव ने जैसलमेर के प्रधान सामन्त होने पर भी इस युद्ध में महारावल की किसी प्रकार की सहायता न की। इस से वीर महारावल ने अपने बाहुबल से सग्रामभूमि में हिंसार के यवन सेनापति के नेतृत्व में लड़ने वाली समस्त राठौड़सेना को पराजित कर के उसी समय पूगल प्रदेश पर आक्रमण कर के उसे अपने राज्य में सम्मिलित कर दिया। विजयी महारावल ने अपनी समस्त सामन्तमण्डली को उत्साह सम्पन्न

देख कर उस की सम्मति से कोटड़ा और बाड़मेर प्रदेशों पर आक्रमण कर के उन के अधिपति राठौड़ सामन्तों को भी अपनी आधीनता की सांकल में बांध लिया। उस समय महारावल सबलसिंह का तृतीय पुत्र महारावल अमरसिंह का अनुज वीर राजसिंह अपने पिता की राजनैतिक अज्ञानता से जोधपुर राज्य में सम्मिलित किये हुये पोकर्ण प्रदेश को पुनः प्राप्त करने की अभिलाषा से बादशाह औरंगजेब की प्रबल सेना के साथ जोधपुर पर आक्रमण किया। परन्तु दुर्भाग्यवश वे इस कार्य में सफलमनोरथ न हुये। उस समय जोधपुर के तत्कालिन होन हार वीर महाराजा अजीतसिंह सम्राट् औरंगजेब के प्रकोपभाजन हो कर अपनी प्राणरक्षा के लिये आबू शिखर की उपत्यकाओं में छिप कर कष्टपूर्वक अपना समय व्यतीत कर रहे थे। ऐसे समय में यवन सेना ने जोधपुर पर अपना अधिकार कर लिया परन्तु राठौड़ राज की दीनावस्था में यवन सेना का साथ दे कर राजसिंह ने जोधपुर दुर्ग को छोड़ कर भागते हुये राठौड़ सामन्तों की तीक्ष्ण तलवारों से खण्डशः (टुकड़े २) हो कर स्वजातिद्रोह का समुचित प्रतिफल प्राप्त किया।

महारावल अमरसिंह प्रबल पराक्रमी और साहसी योद्धा के अतिरिक्त नीतिनिपुण धर्म्मिष्ठ और गुणज्ञ राजा थे। उन्हों ने अपने नाम पर राजधानी से पश्चिम की तरफ डेढ़ कोस की दूरी पर एक मनोहर सरोवर निर्म्माण करवा कर उस के समीपवर्ती उद्यान में अमरेश्वर महादेव का मन्दिर और उस के समीप ही अपने तथा अपनी महाराणी अनूपकुमारी के नाम से अमरवाटिका तथा अनूपवाटिका और बहुत से भव्य प्रासाद निर्म्माण करवाये।

पुष्टिकर जाति के ब्राह्मण चिरकाल से (श्री कृष्ण महाराज के समय से यादवों के कुल गुरु और कुल व्यास हैं) उनके (महारावल के) पूर्वजों से सम्मानित और पूजित हो कर पाट व्यास और पाट पुरोहित आदि सम्माननीय पदों पर रहते आये हैं परन्तु तपोधन श्री नारायण दास के प्रपौत्र तेजस्वी हर्ष चन्द्र व्यास किसी कारण से असन्तुष्ट हो कर पाट व्यास पद को छोड़ कर सिन्ध प्रान्त में चले गये और उन के भ्राता के पुत्र मधुवन जी विद्याध्ययन के लिये काशी जी चले गये। नीतिज्ञ गुणज्ञ और धर्म्मभीरू महारावल ने उस तपस्वी वृद्ध व्यास को राजधानी में पुनः पदार्पण करने के लिये बहुत कुछ कहलोया तथा बहुत कुछ विनय की परन्तु दृढ़प्रतिज्ञ क्रोधी ब्रह्मदेव आजन्म अपनी जन्मभूमि में न आये। महारावल ने पाटव्यास की अनुपस्थिति से प्रतिदिन धार्मिक कृत्यों में विशेष व्याघात उपस्थित होने की आशङ्का से पूजनीय पाटव्यास जी के पद पर उन के भ्रातृपुत्र श्रीमधुवनजी को प्रतिष्ठित करने का विचार किया। मधुवनजो बाल्यावस्था में ही अवप्लुत ब्रह्मचर्य्यव्रत को धारण कर के शास्त्राध्ययन के लिये श्री विश्वनाथ पुरीको (काशीजी) चले गये थे।

वहां पर वे चतुर्वेद और षट् शास्त्र में पारंगामी हो कर स्वदेश को लोट ही रहे थे कि उसी समय महारावल का प्रधान दून उन की अगवानी के लिये काशीजी मे ही जा उपस्थित हुआ। उसने, पाटव्यास के अभाव से दैनिक धर्म्म कार्य की असम्पूर्णता से असन्तुष्टचित्त महारावल के विनय-पूर्ण सन्देश को सर्वतन्त्रस्वतंत्र भावी पाटव्यासजी के चरण कमलों में निवेदन किया। मधुवनजी ने तुरन्त ही अपने काशीस्थ

गुरुदेव की आज्ञा को प्राप्त कर के उस राजकीय दूत के साथ स्वदेश को प्रस्थान किया। महारावल ने दूत के मुख से अपनी राजधानी के समीपस्थ उपवन में विश्राम करते हुये सुन कर आजानुबाहु विद्यानिधि युवा व्यासजी को गजारूढ़कर अत्यन्त सम्मान के साथ राजधानी में प्रवेश करवाया और उन के जीवन निर्वाह के लिये प्रचुर द्रव्यराशि के अतिरिक्त राजधानी के समीप ही जोयालाई पल्वल का निकटवर्ती उर्वर क्षेत्र भी उन को समर्पण कर दिया। उक्त व्यास जी की सन्तान अभी तक उस पर अपना अधिकार रखती है। यहां के ब्राह्मणों में से विद्याध्ययन के लिये सब से प्रथम मधुवन जी ही काशीजी को गये थे। वे संस्कृत के अद्वितीय विद्वान् थे। उन की विद्वत्ता के विषय में यह दोहा अभी तक इस राज्य में प्रचलित है.—

विद्या मधुवन व्यास की थिर राखी थिर पाल।
आधी धूधी सेवआं पूरी पोकर दास ॥ १ ॥

उन्हो ने बहुत से संस्कृत के साहित्य विषयिक ग्रन्थ निर्माण किये थे। उन्हो ने ही सब से प्रथम जैसलमेर मे और उन की सन्तति ने सिन्ध प्रान्त में वैष्णवधर्म्म का प्रचार किया था। संस्कृत विद्या की अभिज्ञता के लिये व्यासकुल प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध है। महारावल के समस्त राज्य में धर्म्म का प्रचार व्यास जाति ही परम्परा से करती चली आ रही है। यद्यपि इस समय भाटी राज्यका उत्तर पश्चिम भूभाग बहावलपुरनरेश और परम प्रतापशालिनी वृटिश जाति के अधिकार में है, तथापि सिन्धप्रान्त की प्राचीन हिन्दू प्रजा वेदविहित कार्य्यों मे सर्व प्रकार की धार्म्मिक

व्यवस्था व्यास जाति से ही ग्रहण करती है। सिन्ध,बिलोचि-स्तान, अफगानिस्तान और बुखारिस्तान पर्य्यन्त। जहां जहां अविकृत वा विकृत रूप में वैश्य भाटी जाति व्यापारार्थ निवास कर रही है वही पर धर्म्मोपदेष्टा दो चार व्यास अवश्य ही उन के साथ रहते हैं।

इस समय जैसलमेर राज्य की सीमा के समीपवर्ती सिन्ध-प्रान्त के प्रसिद्ध नगर खैरपुर, बहावलपुर, अहमदपुर, खानपुर, रोहडी, सखर, शिकारपुर, लाडकाना, जैकमावाद, सीवी और क्वेटा (विलोचिस्थान) कलायत, कंधार, काबुल, बुखारा आदि यवनप्रायः प्रदेशों में भाटीराजत्व काल से ही निवास करने वाली प्राचीन तथा व्यापारार्थ निवास करने वाली अर्वाचीन आर्यजनता की धार्म्मिक मर्य्यादा को अव्याहत तथा अवि-कृत रूप में रखने के लिये भाटी राजधानी (तणोट, देरावर, लुद्रवापाटन, और इस समय जैसलमेर) से उक्त प्रदेशों में अत्यन्त प्राचीन काल से व्यासजाति अद्यावधि पर्य्यन्त आवा-गमन करती ही रही है। सिन्ध, विलोचिस्थान, और अफ गानिस्थान के प्रत्येक प्रसिद्ध नगर में विद्वान् व्यासों के स्थापित किये हुये धर्म्ममन्दिर " द्वारा " नाम से प्रसिद्ध हैं। उक्त नगरों में "स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते" इस भागवदोक्ति के अनुसार समस्त हिन्दू प्रजा व्यास की दी हुई धार्मिक व्यवस्था को सर्वोपरि मानती है और उन की कृपा से ऐसे विकट देशों में भी यवनगण के प्रवल अत्याचारों को धैर्य्य के साथ सहन करती हुई भी विशुद्ध हिन्दू रूप में बनी हुई है। इस समय सिन्धप्रान्त में वृटिश गवर्नमेन्ट का राज्य है इस से उन को किसी भी प्रकार का धार्मिक कष्ट नहीं है। इस प्रान्त में रहने वाली हिन्दू सन्तान अधिकांश में भाटी क

सन्तति है। वह इस समय किराड़ और भाटिया नाम से प्रसिद्ध है। भाटिया जाति की उत्पत्ति भाटीवंश से निर्विवाद प्रमाणित हो चुकी है और किराड लोग भाटी से भी पूर्ववर्ती यादव चौहान पडिहार आदि अत्यन्त प्राचीन राजपूतजाति के विशुद्ध वंशज हैं। इन लोगों ने यवनों के आतङ्क से क्षत्रिय धर्म को छोड़ कर वैश्यधर्म स्वीकार कर लिया था। इस समय शासन सम्बन्धी सुव्यवस्था से भाटिया और किराड जाति प्रचुर धनोपार्जन कर के समृद्ध बन गई है। ये जातियें वंशविशुद्धता के कारण ऐसे म्लेच्छप्रायः देशों में रह कर भी इस विंशति शताब्दि के समय में भी सनातनधर्मानुयायिनी और ब्राह्मणभक्त बनी हुई है। इन का सौन्दर्य, साहस और धैर्य मरूभूमि के राजपूतों से किसी प्रकार भी कम नहीं कहा जा सकता।

यद्यपि भाटी महारावल की अधिकांश व्यास प्रजा इन पुरातन यजमानों में धर्म्मोपदेश कर के ब्राह्मण वृत्ति से ही अपना जीवन निर्वाह करती है तथापि वह अपने स्वदेश प्रेम और राजभक्ति से द्रवीभूत हो कर प्रति तीन वर्ष में एक बार अपने देश और धर्म्ममूर्ति महारावल का दर्शन करने में कभी भी त्रुटि नही करती।

महारावल अमरसिंह का राजत्वकाल ही भाटी राज्य के परमाभ्युदय और प्रवृद्ध गौरव की चरमावधि है, अतः महारावल अमरसिंह के उल्लेखनीय चरित्रों का संक्षिप्त वर्णन करना परमावश्यक है। महारावलने अपने बाहुबलसे बलोंचो तथा राठौड़ोंसे छीने हुये समस्त राज्य को पुनर्हस्तगत करके सुख और शान्तिके साथ बहुतसे धार्मिक कार्य किये, परन्तु उनके सन्तान एक भी नही हुई इससे वे उदास रहा करते थे।

एक समय उन की राजधानी में इणतराम नामक रामानुज सम्प्रदाय के एक तेजस्वी साधु आये। महारावल ने उन का अपूर्व स्वागत किया। उन की श्रद्धा से वह महात्मा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। तब एक अवसर पा कर समाधि के लिये तैयारी करते हुये महात्मा से महारावल ने पुत्र प्राप्त की प्रार्थना की। उन की आस्तिकता से प्रसन्न हो कर महारावल से महात्मा ने कहा कि आज से इकतालिस ४१ दिवस तक कोई भी मेरे पास न आने पावे। इतने दिनों में मैं मन्त्र, साधना से आप की कार्य्य सिद्धि अवश्य कर दूंगा। परन्तु उत्कण्ठितचित्त महारावल साधु दर्शन की अभिलाषा से महात्मा जी के कहे हुये वचनों को भूल कर अट्ठारहवें दिवस ही उन के पास जा पहुंचे। महात्मा जी ने पुत्राभिलाषी महारावल जी को नियमित समय से पूर्व ही अपने समीप आया हुआ देख कर मुसकराते हुए कहा कि "हे महारावल यदि आप नियमित समय से पूर्व मेरी साधना में बाधा न करते तो आप के एक सम्राट् पुत्र होता परन्तु अब आप के एक के स्थान में अट्ठारह सामान्य पुत्र होंगे। उसी महात्मा के कथनानुसार, महारावल के निम्नलिखित अठारह पुत्र हुये। १ जसवन्त सिंह जी राज्य के अधिकारी हुये। २ दीपसिंह जी इन की सन्तति उवाय ग्राम में निवास करती है। ३ विजय सिंह जी। इन की सन्तति जोधपुर राज्य के ओसियां ग्राम में रहती है। ४ कीर्ति सिंह जी। ५ साम सिंह जी इन के वंशज बीकानेर के राज्यान्तर्गत कीर्तासि गाँव के अधिपति है। ६ जैतसिंह जी। ७ केशरी सिंह जी- इन की सन्तान मेवाड़ राज्य के मोलीली ग्राम में निवास करती है। ८ भूभार सिंह जी। ९ गज सिंह जी-इन के उत्तराधिकारी जोधपुर राज्य के गाजू गांव पर अभी तक अपना अधिकार रखते हैं। १० फतह सिंहजी। ११ मोहकम सिंह जी-जेसलमेर

के ओला गांव पर उन की सन्तान का आधिपत्य है। १२ जैसिंह जी। १३ हरि सिंह जी। १४ इन्द्र सिंह जी-इन की सन्तान मेवाड़ के शाहपुर नामक गांव में निवास करती है। १५ महकर्ण जी। १६ भीम सिंह जी। १७ जोध सिंह जी। १८ सुजान सिंह जी। महारावल ने थैयात की चाल से अपने प्रधान रघुनाथ सीहड़ को मरवा कर उस की समस्त सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। महारावल ने अपने जीवन भर में अपने सद्गुणों से प्रजावर्ग को भली प्रकार संतुष्ट कर रखा था, परन्तु वृद्ध सीहड़ की हत्या से उष्ट्र पालक रहबारी जाति अत्यन्त ही अप्रसन्न हो कर अपनी स्वदेश भूमि को छोड़ कर जोधपुर राज्य में चली गई। वीर महारावल चारण जाति पर अत्यन्त कृपा रखते थे। इन के राजत्व काल में एक समय दुर्भिक्षपीड़ित चारणों ने एकत्रित हो कर रात्रि के समय इन के रक्षित वन में से उष्ट्रवर्ग को चुरा लिया। प्रातः काल होते ही वनरक्षक ने चारणगण की तस्करता की सूचना दरबार में पहुंचाई। वृद्ध महारावल. क्षुधापीड़ित चारण जाति को अपनी सेना से उत्पीड़ित करवाना अनुचित समझ कर, स्वयं चारणों के पास गये और अपने प्रत्येक उष्ट्र के परिवर्तन में प्रत्येक चारण को बीस रुपये प्रदान कर के अपने उष्ट्रवर्ग को उन से लौटा लाये।

सम्वत् १७५६ में वीर, यशस्वी और धर्म्मिष्ठ महारावल का स्वर्गवास हो गया। उन के पीछे उन के ज्येष्ठ पुत्र १९२ जसवन्त सिंहजी राज्य के उत्तराधिकारी हुये। महारावल जसवन्त जी ने केवल पांच वर्ष पर्य्यन्त ही राज्य किया। इन के राजत्व काल में कोई उल्लेखनीय विशेष घटना नहीं हुई। इन के निम्न लिखित पांच पुत्र हुये। १ अखत सिंह जी, २ ईश्वरी

सिंह जी, ३ तेजसिंह जी, ४ सरदार सिंह जी, ५ सुल्तान सिंह जी। महारावल अमर सिंह जी के चिरकाल पर्य्यन्त राजसुख उपभोग करने के पश्चात् वृद्धावस्था में स्वर्गधाम पधारने के कारण कुमार जसवन्त सिंह जी का राज्याभिषेक भी वृद्धावस्था में ही हुआ था अर्थात् वे सम्वत् १७५९ में राजसिंहासन पर बैठे और सम्वत् १७६४ में उन का स्वर्गवास हो गया।

महारावल जसवन्तसिंह जी के परलोकवास के अनन्तर इन के ज्येष्ट पुत्र जगत सिंह जी ही राज्य के योग्य उत्तराधिकारी थे परन्तु अत्यन्त खेद का विषय है कि उन्हों ने अपने पिता की विद्यमानता में ही किसी कारणवश आत्महत्या कर ली। इन के बुधसिह जी, अखैसिंह जी और जोरावर सिंह जी नाम के तीन पुत्र थे। महारावल जसवन्त सिह जी के देहान्त के पश्चात् सम्वत् १७६४ में जगत् सिंह जी के ज्येष्ठ पुत्र बुध सिंह जी राजसिंहासन पर विराजमान हुये।

महारावल बुधसिह जी ने निर्बोधावस्था मे ही रावलपद प्राप्त कर लिया था। उन को राज्य की रक्षा करने में असमर्थ देख कर उन के पितृव्य तेजसिह ने राज्यभार अपने हाथ में लेना चाहा। उस ने महारावल जसवन्तसिंह जी के परलोक वास के समय अपने ज्येष्ठ भ्राता ईश्वरी सिंह जी से कहा कि आप राजसिंहासन पर बैठ जाइये परन्तु उन्हों ने अन्याय से राज्य प्राप्त करना अनुचित समझ मृत महारावल के ज्येष्ठ पुत्र (१४३) बुधसिंह जी को राज्यसिंहासन पर बैठा दिया। राज्याभिलाषी तेजसिंह इस से असन्तुष्ट हो कर देशभर में लूट मचाता हुआ सिन्ध को चला गया। उस ने वहां जा कर भी बालक महारावल को मारने के लिये षड्यन्त्र रचा। उस ने अपनी एक दासी के हाथ से नवीन महारावल को विष दिलवाकर

मरवा डाला, और आप ठीक समय पर जैसलमेर पहुँच कर राजसिंहासन पर जा बैठा। तेजसिंह की इस अनुचित कार्यवाही से महारावल जलवन्तसिंह जी के भ्राता हरिसिंह जी अत्यन्त अप्रसन्न हुये। महारावल बुधसिंह जी की हत्या से वे निष्ठुर तेजसिंह के पास रहना अमंगलकारी समझ कर मृत महारावल के अखैसिंह और जोरावर सिंह नामक दोनों कनिष्ठ भ्राता भी वृद्ध हरिसिंह के पास चले गये। हरिसिंह उस समय रोहडी के भखर दुर्ग में रहते थे। वे तेजसिंह को दमन करने के लिये कई तरह के उपाय सोचने लगे। कुछ समय के पश्चात् उन्हों ने बहुत सी सेना इकट्ठी कर ली और वे तेजसिंह को मारने का उपयुक्त अवसर सोचने लगे।

जैसलमेर के पूर्वी नगरद्वार के पास ही घड़सी सर नामका बड़ा भारी सरोवर है। यह सरोवर महारावल घडसी जी ने अपने नाम से बनवाया था। यह नाम का तो सरोवर है परन्तु वास्तव में इस को झील ही कहना चाहिये। जैसलमेरीय जनता इस के भर जाने पर तीन वर्ष पर्य्यन्त जलाकष्ट से मुक्त हो जाती है। ऐसे उपयोगी सरोवर की सफाई के लिये वहां पर परम्परा से यह रीति प्रचलित है कि प्रत्येक वर्ष के अन्त में एक दिन महाराज अपने समस्त कुटुम्बी, सामन्त सेना और प्रजा के समस्त मनुष्यों को साथ ले कर सरोवर पर जाते हैं और सब से पहले वे ही अपने हाथ से एक मुट्ठी रेत उस सरोवर से उठा कर बाहर फेंकते हैं। उन के पश्चात् मंत्री सामन्त आदि समस्त भद्रजन भी अपने महाराज का अनुकरण करते हैं और फिर तो समस्त प्रजा हाथो हाथ एक ही दिन में उसे साफ कर देती है। जैसलमेर में इसे ल्हास कहते हैं। इस प्रकार एक ही ल्हास से उक्त सरोवर प्रत्येक वर्ष के अन्त में साफ हो कर सुधर

जाता था। वृद्ध हरिसिंह ने अपनी कार्य्यसिद्धि के लिये इस अवसर को उपयुक्त समझा। वे अपनी प्रच्छन्न सहायक सेना के साथ ल्हास की नियत तिथि से कुछ दिन पूर्व ही जैसलमेर पहुँच गये थे।

उन्हों ने उक्त ल्हास के दिन अपने सहायक जनों के साथ स्वदेशप्रथा के अनुसार उस कार्य में योग दिया। तेजसिंह को ल्हास खेल ने में दत्तचित्त देख कर हरिसिंह ने उस पर प्रवल आक्रमण किया परन्तु उन के आक्रमण से तेजसिंह पूर्ण पराजित न हुआ किन्तु दोनों तरफ से उसी स्थान पर भयंकर संग्राम छिड़ गया। तेजसिंह आघातित (आहत) हो कर गिर पड़ा और हरिसिंह अपने समस्त अनुयायियों के गतप्राण हो जाने के कारण वहाँ से भाग गये। वे मूलाने गाँव के पास पहुँचे होंगे कि तेजसिंह के सहायक पुरूष ने पीछा कर के उन को वहीं मार दिया। उस पुरुष ने हरिसिंह के मारने का समाचार प्रवल आघातों से व्यथित हो कर मरणोन्मुख तेजसिंह को सुनाया। इस समाचार को सुनते ही हर्षित हो कर तेजसिंह ने भी उसी समय अपने जीर्ण शीर्ण कलेवर को छोड़ दिया। तेजसिंह के सहायकों ने उसी समय उस के पुत्र सवाईसिंह को राजसिंहासन पर बैठा दिया। अखैसिंह निराश हो कर उसी समय वहां से भाग गये। शत्रुओं ने उसी समय उन का काम तमाम करना चाहा परन्तु वे शत्रुगण के पंजे से निकल कर छोड नामक ग्राम के पास पहुँचे ही थे कि उनका घोडा वहीं पर थकित हो कर मर गया। तब वे पैदल ही खूहडी ग्राम में जा कर शिवदान नामक पुष्टिकर ब्राह्मण के आश्रय में अपने दुर्दिनों को व्यतीत करने लगे। उस पुष्टिकर ब्राह्मण ने भावी महारावल की तनमनधन से रक्षा की। वीर और साहसी

अखैसिंह ने एक ही वर्ष में बहुत सी सैना एकत्रित कर के अपने राज्य के समस्त सामन्त और प्रजावर्ग को स्पष्ट तौर से कहला दिया कि न्याय पूर्वक राज्य का अधिकारी मैं ही हूँ। इस से मैं अपनी तलवार से अपने पैतृक राज्य को पुनः प्राप्त करना चाहता हूं। इस लिये प्रत्येक सामन्त और राजभक्त प्रजा को मेरा साथ देना चाहिये।

अखैसिंह की समुचित सूचना को प्राप्त कर समस्त प्रजा और सामन्तमण्डल ने उन का साथ दिया। यह देख कर सवाईसिंह के सहायक उस को अपने साथ ले कर भाग गये, और सम्वत् १७७० में (१४४) अखैसिंह विना किसी प्रकार के उपद्रव के रावलपद पर अभिषिक्त हो गये।

इस प्रकार अनेक प्रकार के कष्ट और आपदाओं को भोग कर वीर अखैसिंह जी महारावल तो बन गये परन्तु इस गृहविवाद में शिकारपुर के अफगान सैनापति दाऊद खां ने भाटी राज्य का समस्त पश्चिमी भाग छिन लिया। उस ने भाटियों की पुरातन राजधानी देरावर और खाडाल प्रदेश को अपने अधिकार में कर के भावी बहावलपुर राज्य की नीव डाली।

इस समय जोधपुर और बीकानेर के राठौड़ नरेशों ने भाटी गण को आत्मविग्रह में व्यग्र देख कर इस विस्तृत राज्य के फलोधी, बाडमेर, पूगल आदि प्रदेश अपने अधिकार में कर लिये। महारावल ने राजपद पर अभिषिक्त हो कर सब से प्रथम भाटी गण के आत्मविग्रह को उपशान्त किया। तदनन्तर उन्हों ने बाडमेर और कोटडे के राठौड़ सामन्तों को पुनः अपनी आधीनता में करने के लिये भाटी सेना के साथ कोटड़े

पर आक्रमण किया। उन्हों ने अपने प्रबल पराक्रम से कोटड़े के तत्कालीन सामन्त को दुर्ग से अधिकारच्युत कर के कोटड़ा प्रदेश को भाटी राज्य में सम्मिलित कर दिया। परन्तु अपनी अन्तावस्था में मन्त्रीगण की सम्मति से उक्त प्रदेश की आधी आय राज्य में देने की प्रतिज्ञा करने पर कोटड़ा प्रदेश को जेसा जगतसिंह वीरम को प्रदान कर दिया, और उस के पास ही शिव नामक ग्राम में न्यायालय बनवा कर उस में राज्य की तरफ से एक शासक नियुक्त कर दिया।

बाड़मेर के राठौड़ सामन्त ने किसी प्रकार भी जब वश्यता स्वीकार नहीं की तब महारावल ने विकुमपुर के अधिपति अपने प्रधान सामन्त हरनाथसिंह के द्वारा उस को जैसलमेर बुलवा कर मरवा दिया। विकुमपुर के स्वामी भक्त राव हरनाथ सिंह के मरने पर उन का पुत्र कुम्भा महारावल के आदेश के बिना ही अपने पराक्रम से राव बन गया। वह जैसलमेर की आधीनता से मुक्त हो कर बीकानेर महाराज की वश्यता स्वीकार करने का प्रयत्न करने लगा। उस के इस उद्धताचरण से प्रकुपित हो कर महारावल ने सेना के साथ विकुमपुर पर आक्रमण कर के कुम्भा को मार कर उक्त प्रदेश को भी सम्वत् १८१६ में खालसे कर दिया।

इस समय जोधपुर के महाराज बखत सिंह जी, अपने भतीजे रामसिंह को राज सिंहासन से उतार कर, अपने आप महाराजपद पर अधिष्ठित हो गये। क्रोधित रामसिंह ने पुरोहित जगू की सहायता से मरहट्टों का आश्रय लिया। महाराष्ट्रगण को प्रबलवेग से जोधपुर पर आक्रमण करने के लिये आना हुआ देख कर अपने कुटुम्ब को महारावल की

राजधानी जैसलमेर में प्रेषित कर दिया। महारावल ने अत्यन्त आदर के साथ उन को अपने राजप्रासादों में निवास दिया, और स्वयं प्रवल भाटी सेना के साथ जोधपुर की रक्षा के लिये महाराज वखत सिंह जी की सहायता में उपस्थित हुए।

सम्वत् १८१० में सिन्ध प्रदेश के खुदा आवाद नगर का सामन्त कलोड़ जाति के मुसलमान नूर महम्मद का पुत्र यार महम्मद पश्चिमी राजपूताने को गृहविवाद में संलग्न देख कर जोधपुर और जैसलमेर राज्य को अपने अधिकार में करने की अभिलाषा से वहुत सी सेना एकत्रित कर के जैसलमेर पर आक्रमण करने के लिये चढ़ आया। वह भाटी राज्य के मार्गस्थ गावों को लूटता हुआ राजधानी (जैसलमेर) से सात कोश की दूरी पर नहड़िये गॉव तक वेरोक टोक चला आया। महारावल के पास उस को दमन करने के लिये उस समय उपयुक्त सैना का अभाव था। इस से वे सोच विचार में पड़ गये परन्तु ईश्वर की कृपा से उस आक्रमणकारी दुष्ट यवन की सवारी का प्यारा घोडा उसी रात्रि को अचानक मर गया; इस अपशकुन से वह हतोत्साह हो गया। वह दूसरे दिन वापिस लौटने ही को था कि पिछली रात्रि में उस के उदर में विषम वेदना उत्पन्न हो गई, और वह प्रातःकाल ही उस वेदना की प्रवलता से मर गया। उस के अनुयायी उसी समय उस के शव को अपने साथ ले कर वहां से भाग गये। महारावल ने उस की आकस्मिक मृत्यु के समाचार सुन कर अत्यन्त आनन्द मनाया और राजधानी के द्वार से खाली हाथों यवनगण के लौटने का कारण उन्हों ने एक मात्र कुलदेवी का प्रताप ही समझ कर भगवती के उपासकों को वहुत कुछ पारितोषिक प्रदान किया।

महारावल अखैसिंह जी ने राज्यसिंहासन को अपने अधिकार में करने के पश्चात् राज्य के किसी भाग को समीपवर्ती दूसरे राजा के अधिकार में न जाने दिया, परन्तु अपने पूर्वजों की तरह वे अपने राज्य की वृद्धि भी न कर सके। उन्हों ने मोहम्मद शाही सिक्के को बदल कर अपने राज्य में अपने नाम से अखैशाही मुद्रा का प्रचार किया; जैसलमेर राज्य के पोकर्ण और सिन्ध प्रान्त के सीमान्त गावों में अभी तक अखैशाही रूपये का ही चलन है।

महारावल अखैसिंह जी ने अपने सहायक बाल जी पुरोहित को पाट पुरोहित का पद प्रदान किया। उस समय से ले कर अभी तक पाट पौरोहित्य पद पर बालाजी के वंशज ही हैं। इस पुरोहित वंश ने समय २ पर परम्परा से महारावल तथा भाटी राज्य की रक्षा के लिये अपने प्राण तक दे डाले हैं। पुरोहित जाति के अनन्त उपकारों के लिये भाटी वंश उस का चिरकाल के लिये ऋणी रहेगा।

इस प्रकार अपने समस्त सामन्तमण्डल के तथा प्रजावर्ग के साथ खूब आनंद मंगल के साथ काल यापन करते हुये वे ३९ वर्ष पर्य्यन्त राज्य कर के स्वर्गवासी हो गये। उन के मूलराज, पद्मसिंह, खुसालसिंह और रतनसिंह नाम के चार पुत्र हुये। महारावल अखैसिंह जी कोश में पच्चीस लक्ष मुद्रा नकद छोड कर स्वर्गधाम पधारे थे। उन के पश्चात् उन के ज्येष्ठ पुत्र मूलराज जी सम्वत् १८१८ में राजसिंहासन पर विराजमान हुये।

(१४५) महारावल मूलराज जी के राज्यारूढ होते ही सामन्तगण ने आपस में कलह करना तथा अन्य नरेशों के राज्य में लूट खसोट मचाना आरम्भ किया। महारावल के प्रधान मन्त्री महता स्वरूपसिंह ने उन को दमन करने के

लिये बहुत से प्रयत्न किये इस लिये समस्त भाटी सामन्त उस से रुष्ट हो गये थे। इन सामन्तों के पास, इस समय अपनी आजीविका के लिये उपजाउ जमीन का अत्यन्त स्वल्प भाग रह गया था। इस से वे सम्मिलित हो कर समीपवर्ती राज्यों में और समय २ पर भाटी राज्य में भी लूट पाट मचा कर अपना जीवन निर्वाह करते थे परन्तु इस प्रकार की लूट पाट से स्वदेश में सुख शांति तथा सुव्यवस्था का नाम निशान न रहा और समीपवर्ती राजा लोग भी तङ्ग आकर जैसलमेर राज्य को कडी नज़र से देखने लगे क्यों कि भाटी लोग अन्य राज्य की प्रजा को लूट कर स्वदेश में चले आते थे इस से अन्य राजा उन का कुछ भी न कर सकते।

परन्तु सामन्त गण के इस प्रकार के आचरणों से भाटी राज्य के शत्रु दिनप्रतिदिन बढ़ने लगे और इस से प्रधान मंत्री तथा राज्य के हितचिंतकों को इस प्रकार की आशंका होने लगी कि कहीं ऐसा न हो कि सम्मिलित राजन्यवर्ग अत्यन्त क्रुद्ध हो कर इस प्राचीन राज्य को हानि पहुँचाने पर कटिबद्ध हो जाय। इस लिये महारावल के प्रधान मन्त्री ने राज्य के अति साहसी सामन्तगण को दमन करना आरम्भ किया। इसी कारण स्वरूप सिंह और सामन्त गण में द्वेष भाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। परन्तु उस के आगे किसी की एक भी न चलती थी। इस से रुष्ट सामन्तगण एकत्रित हो कर मंत्री के नाश करने का उपाय सोचने लगे।

महारावल मूलराज के राय सिंह, लालसिंह और जैतीसिंह नाम के तीन कुमार थे। उन के ज्येष्ठ कुमार रायसिंह से भी स्वरूपसिंह का वैमनस्य हो गया था। स्वेच्छाचारी मंत्री ने अपनी प्रभुता जतलाने के लिये युवराज के दैनिक व्यय को

कुछ कम कर दिया था। युवराज इस को न सह सके। वह अपने पिता को मंत्री के वश में देख कर मंत्री को अधिकारच्युत कर ने के लिये रूष्ट सामन्तगण से जा मिले। सामन्तगण ने युवराज के साथ सम्मिलित हो कर परामर्श किया कि महारावल की विद्यमानता में स्वरूपसिंह को मन्त्रीपद से अलग करना सहज नही है क्यों कि उस ने राजनैतिक चातुर्य्य से महारावल को सब तौर से अपने वश में कर लिया है ऐसी अवस्था में उस को बिना मारे हम लोग अपने अधिकारों को कदापि प्राप्त नही कर सकते। क्रुद्ध युवराज भी सामन्तगण के इस प्रस्ताव से सहमत हो गये।

सम्वत् १८४० की मकर संक्रान्ति के उत्सवोपलक्ष्य में समस्त सामन्तगण महारावल के दर्शनार्थ राजप्रासाद में एकत्रित हुआ। प्रधान मन्त्री स्वरूपसिंह भी राज्यसिंहासन के पास एक तरफ समुचित आसन पर बैठ गया। इस पर्व दिवस को प्रजावर्ग श्री लक्ष्मीनाथ जी के दर्शनों के पश्चात् महारावल के दर्शन से परम पुनीत हो कर अपने २ घर को जाने लगा। क्रमशः सभा विसर्जन का समय होने लगा, इसी समय सामन्तगण के संकेत से महारावल के सन्मुख ही युवराज ने अपने कठिन कृपाण की धार से मंत्री का काम तमाम कर डाला। युवराज तथा सामन्तगण को एक मत देख कर महारावल भयभीत हो अन्तःपुर में भाग गये। सामान्तगण ने (यह सोच कर कि यदि महारावल राज्यसिंहासन पर रहे तो वे अवश्य ही अपने प्रिय मंत्री की मृत्यु का बदला लेंगे) इसी समय युवराज को राज्यसिंहासन पर बैठा दिया। पितृभक्त रायसिंह ने पिता की विद्यमानता में पहले तो

राजसिंहासन पर बैठना अस्वीकार किया परन्तु जब उस ने देखा कि यदि मैं इस समय राजसिंहासन पर न बैठा तो अनिष्टाशङ्की क्रुद्ध सामन्तगण मेरे लघु भ्राता को राजपद पर अभिषिक्त कर देगा ऐसी अवस्थामे मैं उभयतो भ्रष्ट हो जाऊंगा। इस प्रकार सोच समझ कर रायसिंह राजसिंहासन पर तो न बैठा परन्तु उस ने राज्य का समस्त भार अपने हाथ में ले लिया। उन्हों ने महारावल को सभा निवास नामक राजप्रासाद में नजर वन्द कर दिया।

महारावल मूलराज सिंहासनच्युत हो कर तीन महीने और चार दिन सभा निवास में वन्द रहे। इन दिनों भाटी राज्य में चारों तरफ अराजकता फैल गई थी। सामन्तगण पहले की तरह उद्धत हो कर लूट खसोट मचाने लगा। खाडाल और देरावर का प्रधान सामन्त स्वतन्त्र हो कर सामना करने लगा। उस ने केहराणी दावद पौत्रे वूटे वहादुर खां के सेनापतित्व में वहुत सी यवन सेना अपने राज्य की रक्षा के लिये एकत्रित कर ली और अपने अधिपति महारावल के राज्य में इस यवन सेना की सहायता से अनेक प्रकार के उपद्रव मचाने लगा। उस ने अपने अधिकृत प्रदेश में वूटे वहादुर खां को नवीन दुर्ग वनवाने की अनुमति प्रदान की। भाटी वंश के चिर शत्रु यवन-धर्म्मावलम्बी वूटे वहादुर खां ने भाटी सरदार की अनुमति से भाटी राज्य में दीनपुर नामका नवीन दुर्ग वनवा कर उस में देरावलपति की सहायता के लिये वहुत सी मुसलमान सेना सुरक्षित रख छोड़ी। वहादुर खां कई दिन तक उस यवन सेना के साथ भाटी राज्य को लूटता रहा फिर सिन्ध के अमीर से मिल कर उस ने प्रवल यवन सेना के साथ देरावर पर आक्रमण कर के देरावरपति भाटी सामन्त को उस के जाति-द्रोह का उचित प्रतिफल दे दिया।

देरावर भाटी राज्य से अलग हो कर बहावलपुर की मुसलमानी रियासत में परिणित हो गया और भाटी राज्य का अवशिष्ट समस्त पश्चिमी भाग यवनों के अधिकार में चला गया।

और इधर से महाराजा जोधपुर ने बाडमेर, शिव, कोटिडा आदि समस्त प्रदेश अपने अधिकार में कर लिये। बीकानेर के महाराज दो सौ वर्षों से समय २ पर कुछ न कुछ जैसलमेर की जमीन को अपने अधिकार में करते आ रहे थे। इस समय तो तत्कालीन महाराज ने जैसलमेर के द्वितीय प्रधान सामन्त पूगलपति को पूर्णरूप से पराजित कर के उक्त प्रदेश को अपने अधिकार में कर लिया था। वीर पूगलपति ने राठौड़ राजा की वश्यता स्वीकार करने की अपेक्षा संग्राम भूमि में शयन करना ही उचित समझा। सम्वत् १८४० में वीर पूगलपति ने समर क्षेत्र में अद्भुत वीरता दिखला कर अमरपुर को प्रस्थान किया। उन की मृत्यु के पश्चात् समस्त पूगल प्रदेश बीकानेर महाराज के अधिकार में चला गया। बीकानेर के महाराज ने मृत भाटीराव के भ्रातृपुत्र को राव पद प्रदान कर के सर्वदा के लिये उस को अपनी अधीनता की श्रृङ्खला में बाँध लिया। इस प्रकार प्राचीन भाटी राज्य की दुरवस्था देख कर जैसलमेर के वीर सामान्त झिझिणयाली के अधिपति अनूपसिंह की वीरपत्नी के हृदय में महारावल मूलराज को बन्धनोन्मुक्त करने की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न हुई। वीर अनूपसिंह की सम्मति से ही रायसिंह ने स्वरूप सिंह को मार कर महारावल को च्युत कर दिया था और इसी से समस्त राज्य में अराजकता फैल गई थी। एक दिन उस बुद्धिमती राठौड़-नन्दिनी ने राजभक्ति के वशीभूत हो कर अपने पुत्र जोरावर सिंह से कहा कि हे पुत्र! तुम किसी भी प्रकार से महारावल

को राज्यसिंहासन पर बैठा कर स्वदेश में सुख शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना करो।

वीर जोरावर सिंह ने अपने पितृव्य अर्जुनसिंह और धारू प्रदेश के सामन्त मेघराज की सहायता से बहुत सी भाटी सेना एकत्रित कर के जैसलमेर को प्रस्थान किया। ये दोनो सामान्त अपनी सेना के साथ जैसलमेर के दुर्ग में घुस गये। उन्हों ने तत्काल ही सभा निवास पर आक्रमण कर के महारावल को बन्दीगृह से छुड़ा दिया। सामन्तों की अशिष्टता से महारावल पूर्णरूप से हताश हो गये थे। इस समय उन्हों ने उसी क्रान्ति कारियों के अग्रणी अनूपसिंह के वीर पुत्र जोरावर सिंह की कृपा से अपने को कारागार से निर्मुक्त देख कर अत्यन्त आश्चर्य किया। कुछ समय तक तो वे द्विविधा में पड़ गये परन्तु जोरावर सिंह के वास्तविक रहस्य को सुन कर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हों ने उस की वीर और राजभक्ता माता को अपने छुटकारे के लिये बहुत सा धन्यवाद दिया।

महारावल ने बन्धनोन्मुक्त हो कर अपने परम सहायक जोरावर सिंह, मेघ सिंह आदि वीर सामन्तों की सहायता से उसी समय राज्याधिकार अपने हाथ में कर लिया और अपने उद्धत पुत्र राय सिंह को निर्वासन दण्ड दिया। युवराज राय सिंह उस समय निश्चिन्त हो कर राजप्रासाद में सोये हुए थे। महारावल के आदेशानुसार उन का एक अनुचर काला घोडा और काले ही वस्त्र ले कर युवराज के पास गया। उस के पहुंचने से पहले ही महारावल की पुनः राज्यप्राप्ति सूचक वाद्यध्वनि ने रायसिंह को निन्द्रोन्मुक्त कर दिया था। युवराज महारावल के आदेश की प्रतीक्षा ही कर रहे थे कि इतने ही में उस अनुचर ने उन को काला घोड़ा तथा काले वस्त्र दे कर

महारावल की कठोर आज्ञा कह सुनाई। युवराज ने उसी समय महारावल के प्रदान किये हुए काले वस्त्रों को पहन कर अपनी मातृभूमि को प्रणाम किया और फिर अपने कतिपय सहायक सामन्तों के साथ उसी काले घोड़े पर आरूढ़ हो कर जोधपुर की तरफ प्रस्थान किया। महारावल श्री मूलराज जी ने राजसिंहासन पर विराजमान होते ही अपने प्रिय प्रधान स्वरूप सिंह के पुत्र सालिम सिंह को प्रधानामात्य के पद पर नियुक्त किया। महता स्वरूप सिंह की हत्या के प्रधान कारण झझणियाली के अधिपति सामन्त अनूप सिंह ही थे परन्तु उन्हीं के वीर पुत्र जोरावर सिंह ने ही अपने बाहुबल से महारावल जी को राज्यसिंहासन पर दुबारा अधिष्ठित किया था इस से महारावल जी राजभक्त जोरावर सिंह पर भी अत्यन्त स्नेह रखते थे। उन्हों ने स्वल्प समय में ही महारावल के दरबार में अतुलसामर्थ्य प्राप्त कर लिया।

सालिम सिंह ने अमात्यपद प्राप्त कर के अपने पितृहन्ता युवराज रायसिंह तथा उन के सहायक प्रधान २ भाटी सामन्तों को अपनी कूट नीति से मरवाना निश्चित किया परन्तु तेजस्वी जोरावरसिंह की विद्यमानता में वह अपने को असलफ मनोरथ देख कर सब से प्रथम उस को ही मरवाने का उपाय सोचने लगा। सालिम सिंहका दुरभिप्रायः महारावल के राजकुमारों तथा समस्त प्रधान सहायकों को भली प्रकार विदित हो गया। वे सब अत्यन्त क्रोधित हो कर अपने प्राणों को बचाने के लिये स्वदेश को छोड़ कर समीपवर्ती जोधपुर तथा बीकानेर के महाराजाओं के आश्रय में रहने लगे।

युवराज रायसिंह निर्वासित हो करपहले ही से जोधपुर महाराज विजयसिंह जी के आश्रय में चले गये थे, जोधपुर के महाराज

ने उन को समुचित आदर सत्कार के साथ अपने पास रक्खा परन्तु उद्धतस्वभाव और तेजस्वी रायसिंह बहुत दिनों तक वहाँ भी न रहने पाये। उन्हों ने अपने व्यय के लिये जोधपुर के किसी धनवान् महाजन से कुछ रूपये उधार लिये थे। महाजन ने थोड़े समय के पश्चात् उन से ऋण चुकाने के लिये निवेदन किया परन्तु वे अर्थाभाव के कारण उस को न चुका सके। एक दिन युवराज घोड़े पर सवार हो कर जोधपुर की बजार में से अपने डेरे पर जा रहे थे उस समय उस वनिये ने युवराज के घोड़े की लगाम पकड़ कर उन को बहुत कुछ कहा सुना, भरे बाजार में वनिये के इस अशिष्टाचार से युवराज अत्यन्त ही क्रोधित हुये परन्तु अपनी सामयिक परिस्थिति को विचार कर उन्हों ने अत्यन्त नम्रता से उस वनिये से केवल इतना ही कहा कि महारावल श्री मूलराज जी की शपथ खा कर कहता हू कि आगामी मास में मैं अवश्य ही तुम्हरा सब ऋण चुका दूंगा। परन्तु उस अविचारी वनिये ने अकड़ कर कहा कि यहां पर महारावल की शपथ की क्या आवश्यकता है यदि शपथ ही लेना है तो महाराज विजयसिंह जी की शपथ लीजिये।

वनिये की इस उद्दण्डता से क्रोधित युवराज ने अपनी तलवार निकाल कर वहीं पर उस को मार डाला। इस घटना से अन्य राजा के आश्रय में रहने से उन को ग्लानि हो गई। वे उसी समय अपने घोडे पर सवार हो कर जैसलमेर की तरफ चल दिये। जाते समय उन्हों ने कहा कि "पराम भोजी होने की अपेक्षा अपने पिता की दासता स्वीकार करना ही अच्छा है"। युवराज को अपने समस्त नौकर चाकर और कुटुम्ब के साथ अकस्मात् जैसलमेर में आया हुआ देख कर राजधानी की समस्त प्रजा उन को देखने लगी। उन के आकस्मिक

आगमन से महारालजी के हृदम में खलबली हो उठी। महारावल ने एक दूत भेज कर उन के आगमन का कारण पूछा। युवराज ने उस दूत से विनय पूर्वक कहा कि "अपनी मातृ भूमि का दर्शन करने के पश्चात् मेरा तीर्थयात्रा करने का विचार है"। महारावल ने अपने निर्वासित पुत्र के वचनों पर अविश्वास कर के तत्काल ही उन के समस्त अनुयायियों को तथा उन को शस्त्र हीन कर के अपने देवा नामक दुर्ग मे रहने के लिये भेज दिया।

झंझिणियाली के वीर सामन्त जोरावर सिंह अपने सद्गुणों और असीम उपकारों के कारण महारावल जी मूलराज जी के परम प्रीतिभाजन हो गये थे। भाटी राज्य में उन की विशुद्ध ख्याति और अतुल सामर्थ्य प्रतिदिन बढ़ने लगा। उन की उत्तरोत्तर उन्नति को सालिम सिंह ने अपनी प्रधानता में विघ्न स्वरूप समझ कर उन का महारावल के साथ वैमनस्य करवा दिया। महारावल ने सालिम सिंह की सम्मति में आ कर अपने उद्धारकर्ता परोपकारी वीर जोरावर सिंह को अधिकारच्युत कर के निर्वासित कर दिया। वीर जोरावर सिंह सालिम की कूट नीति से अत्यन्त क्रुद्ध हो कर विद्रोही भाटी सामन्तों में सम्मिलित हो गये और स्वर्थी मन्त्री को उस की करतूत का समुचित दण्ड देने का उपाय सोचने लगे। जोरावर सिंह के चले जाने से सालिमसिंह की स्वेच्छाचारित्ता प्रति दिन बढने लगी। वह अपने पिता की तरह महारावल को अपने हाथ की कठपुतली बना कर राज्य कार्य्य में मनमानी करने लगा।

महारावल के ज्येष्ठ पुत्र युवराज रायसिंह के अभयसिंह और जालिमसिंह नाम के दो पुत्र थे। वे दोनों ही अधिकार-च्युत भाटी सामन्तों के साथ रहा करते थे। महारावल ने

अपने पोतों को सामन्तों से मांगा परन्तु उन्हों ने सालिम के प्रधान मन्त्रित्व में उन को महारावल के हाथों में समर्पण करना अस्वीकार किया।

उस समय जोधपुर के महाराजा विजयसिंह जी के परलोक-वास होने के कारण भीमसिंह जी मारवाड़ के राजसिंहासन के उत्तराधिकारी हुये। महारावल जी ने मारवाड़ के नवीन महाराजा के अभिवादनार्थ अपने प्रधान मन्त्री सालिमसिंह को जोधपुर भेजा। वहां से लौट कर जैसलमेर को आते हुये सालिमसिंह को जोरावरसिंह के नेतृत्व में निर्वासित भाटी सामन्तों ने पकड़ लिया। वे तलवार उठा कर सर्वस्वापहारी मन्त्री को प्राणदण्ड देने लगे। मृत्युमुख में पड़े हुये सालिमसिंह ने आँखों में आंसू भर कर अत्यन्त नम्रता से अपनी पगड़ी शिर से उतार कर जोरावर सिंह के चरणों में धरदी। सरल प्रकृति राजपूत वीर ने, चिरद्वेषी और अपकारी प्रधानामात्य को भी अपना शरणागत समझ कर, उसे उन क्रोधित सामन्तों की तीक्ष्ण तलवार के वार से बचा लिया। उस ने जोरावर सिंह की कृपा से पुनर्जीवन प्राप्त कर के तत्काल ही जैसलमेर को प्रस्थान किया। वहाँ जाकर अपने प्राणदाता महोपकारी जोरावरसिंह को महारावलजी की सभा में प्रधान सामान्त का प्रतिष्ठित पद दिलवा दिया। जोरावरसिंह ने राजसभा में प्रवेश कर के स्वल्पकाल में ही पहले की तरह अपनी प्रधानता जमा ली। अन्यान्य विद्रोही भाटी सामन्त युवराज रायसिंह के अभयसिंह और जालिमसिंह नामक पुत्रों को अपने साथ लेकर महारावलजी के आश्रित राठौड़ सामन्त के बाड़मेर के दुर्ग में रहने लगे। वे समय समय पर जैसलमेर के यात्रियों को लूटा करते थे।

महारावलजी ने इन को दमन करने के लिये बाडमेर पर आक्रमण किया; छः मास तक सामन्तगण उन का सामना करता रहा, अन्त में भोजन के अभाव से और जोरावरसिंह के विश्वास दिलाने पर उन्हों ने युवराज रायसिंहजी के दोनों कुमारों को महारावलजी के हाथों सौंप कर आत्मसमर्पण कर दिया। भाटी सामन्त पराजित हो कर महारावल जी के वशवर्ती हो गये परन्तु महारावल जी ने उन में से किसी को भी समुचित अधिकार प्रदान न किया इस से वे अपने २ घर को जाकर अत्यन्त कष्टपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

महारावलजी ने अपने दोनों पोतों को भी सालिमसिंह की सम्मति से उन के पिता (रायसिंहजी) के पास देवा में रहने के लिये भेज दिया। कुछ दिनों के पश्चात् देवा के कोट में भयंकर आग लग गई। जिस से युवराज रायसिंह और उन की धर्म्मपत्नी दोनों ही जल कर मर गये। परन्तु सौभाग्यवश अभयसिंह और जालिमसिंह बच गये। प्रधान मन्त्री (सालिमसिंह) ने प्रकाश में तो उन के साथ अत्यन्त सहानुभूति और समवेदना प्रदर्शित की; परन्तु उस के मन मे उसी समय यह आशंका उत्पन्न हुई कि इस घटना से यदि महारावल ने दयार्द्र हो कर दोनों कुमारों को अपने पास बुला कर उन्हें कुछ अधिकार देदिये तो मेरे अव्याहत शासन में अवश्यमेव बाधा उपस्थित होगी। यह सोच कर उस ने दोनों कुमारों को अराजक भाटी सामन्तगण से मिले हुये प्रमाणित कर के उन को राजधानी से अत्यन्त दूर रामगढ नाम के दुर्ग में भेजने की सम्मति महारावलजी को दी। कूट मन्त्री की इस प्रकार की स्वार्थपरायणता से भरी हुई सम्मति का धीर जोरावरसिंह ने उस के सामने ही भरी राज सभा में

प्रतिवाद किया। उन्हों ने महारावल के सामने निर्भय हो कर कहा कि "आप के सिंहासन के उत्तराधिकारी कुमार अभयसिंह और उन के कनिष्ठ भ्राता जालिमसिंह के जीवन का मैं प्रतिभू हूं।

राजकुमार को जब आगे राजसिंहासन पर विराजमान होना होगा तब ऐसी अवस्था में हमारा यह परम कर्तव्य है कि हम उन को राजधानी में आप के पास रख कर राज्य-कार्य्य की शिक्षा दें न कि उन को राजधानी से अत्यन्त दूर रामगढ़ जैसे अपरिचित स्थान में भेज कर प्रजा वर्ग की सहानुभूति और प्रेम से वञ्चित रक्खें। वीर सामन्त की निर्भयोक्ति का महारावल पर अच्छा प्रभाव पड़ा परन्तु मलीन-हृदय मन्त्री जोरावरसिंह को अपनी स्वार्थ-सिद्धि में प्रबल व्याघात स्वरूप समझ कर उन के प्राणहरण करने का उपाय सोचने लगा। वीर जोरावरसिंह के खेतसी नाम का एक कनिष्ठ भ्राता था। सालिम ने राजस्थान की प्रथा के अनुसार उन की स्त्री के साथ धर्म्मभाई का सम्बन्ध स्थापित कर रक्खा था। वह समय २ पर उस भोली स्त्री से कहा करता था कि मैं जोरावरसिंह के पद पर तुम्हारे पति को बैठाने की पूर्ण अभिलाषा रखता हूं परन्तु क्या करूं उस की विद्यमानता में तुम्हारे पति को राजसभा में इस उच्चपद पर बैठाने में मैं सफलमनोरथ नहीं हो सकता, यदि इस कार्य में तुम मुझे सहायता दो तो तुम्हारे पति को राजसभा में सर्वप्रधान सामन्तपद प्राप्त करने का उच्च सम्मान अनायास ही प्राप्त हो सकता है।

सालिम के समय २ पर इस प्रकार के प्रवञ्चनपूर्ण वचनों के प्रभाव से प्रलोभित हो कर एक दिन उस अविवेकिनी स्त्री ने बड़ी उत्सुकता से उस से पूछा कि वह कौन सा उपाय

है कि जिस के कारण से मेरे पति इस उच्चपद के अधिकारी हो सकते हैं। सालिम ने, उस को अच्छी तरह से अपने यन्त्र जाल में फँसी हुई देख कर तत्काल ही हलाहल विष की एक पुड़िया उसे देकर कहा कि इस पुड़िया को समय पा कर जोरावर सिंह के भोजन में मिला देना, बस इस के खाते ही उस का प्राणपखेरू उड़ जायगा। उस लोभान्धा स्त्री ने वैसा ही किया। विषमिश्रित भोजन करने से वीर जोरावर सिंह इस असार संसार को छोड़ कर परलोक को सिधार गये। वीर जोरावरसिंह के मर जाने से सालिम की स्वेच्छाचारिता अत्यन्त बढ गई। उस ने जोरावरसिंह की प्राणापहारिणी उस स्त्री के पति खेतसी को झिझिणियाली के प्रधान सामन्त का पद दिलवा दिया। खेतसी वीर जोरावरसिंह के समान प्रभावशालि न था और वह अपने को सालिम का दयापात्र समझता था। अतः अब राजसभा में एक मात्र सालिम ही राजनैतिक कार्य्यों में अपने को सर्वेसर्वा समझने लगा, उस ने महारावल को तो पहले ही से अपने वश में कर रक्खा था अब उस ने निःशंक होकर अपने पिता की हत्या में सहायक, सम्मिलित और सहानुभूति प्रदर्शक बारू टेकरी आदि प्रदेशों के वीर सामन्तों को ढूढ २ कर अनेक प्रकार के कूट उपायों से मरवाडाला।

इस प्रकार वीर सामन्तों के मारे जाने से भाटी राज्य, अत्यन्त सामर्थ्य हीन हो गया। अत्याचारी सालीम ने अपने पिता को मारने वाले युवराज राय्यसिंह के दोनों कुमारों को राज्य के अधिकार न दे कर महारावल जी के कनिष्ठ पुत्र जैतसिंह जी के पौत्र बालक गजसिंह को राज्य देकर मन्त्रित्व पद के सत्वको परम्परा के लिये अपनी सन्तान के हाथों

में सुस्थिर करना चाहा। परन्तु रायसिंहजी की सन्तान की विद्यमानता में बालक गजसिंह को राजसिंहासन पर बैठाने के प्रस्ताव का कोई भी अनुमोदन नहीं करेगा और यदि रायसिंहजी के पुत्रों के हाथ में राज चला गया तो फिर मेरे अधिकार सुस्थिर नहीं रह सकते यह सब सोच कर दुष्ट सालिम ने रायसिंहजी के दोनों (अभयसिंह और जालिमसिंह) कुमारों की हत्या करने के लिये खेतसी से कहा। खेतसी ने मन्त्री के इस जघन्य प्रस्ताव से असम्मत हो कर उस से कहा कि मैं अपने स्वामी के वंशधरों को मार कर कलंकित होना नहीं चाहता। खेतसी के इस कोरे उत्तर से सालिम का निर्दय हृदय जलभुन कर खाक हो गया। वह उस समय तो खेतसी से कुछ न बोला परन्तु वह उसी दिन से खेतसी को भी उस के भाई जोरावर सिंह के पास भेजने का उपाय सोचने लगा। खेतसी अपने भाई स्वरूप सिंह के विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिये जोधपुर राज्य के बालोतरा प्रदेशान्तर्गत फ़ुलियो नामक गाँव में गये थे, वे वहाँ से लौट कर जैसलमेर आरहे थे कि सालिम ने अपने एक गुप्तचर को विजोराय (विजय गढ़) के दुर्ग में उन की हत्या के लिये तैनात कर दिया। उस गुप्तचर ने बालोतरा से लौटते हुये खेतसी और उन के भ्राता को बड़े आदर के साथ विजयगढ़ के दुर्ग में ले जा कर रात्रि के समय दोनों को मार डाला। खेतसी की स्त्री बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी पति को विवाह से लौट कर घर आया हुआ न देख कर अपने हितचिन्तक सालिम के पास गई। दुष्टहृदय सालिम ने उस को बडे आदर सत्कार से अपनाया। दो चार दिवस के पश्चात् सालिम के एक नौकर ने (जो नियत समय खेतसी की धर्म्म पत्नी को भोजन देने जाया करता था) उस को कुटिल सालिम की करतूत कह सुनाई।

सालिम के सेवक से अपने पति के मृत्युसमाचार को सुन कर वह स्त्री अत्यन्त क्रोधित हुई। उस ने कुटिल सालिम के इस क्रूर कर्मका बदला लेने में अपने को असमर्थ समझ कर पास रक्खी हुई तीक्ष्ण कटारी से उसी रात को आत्महत्या कर डाली। खेतसी के मारे जाने पर महारावल की सभा में भाटी सामन्तों का नाम मात्र का प्राधान्य भी जाता रहा।

महारावल जी प्रथम से ही सालिम के वश में थे परन्तु वृद्धावस्था में तो वे सालिम के हाथ की कठपुतली हो गये। उन के हृदय विदारक और अरोचक जीवनवृत्तान्त पर ध्यान देने से यह बात स्पष्टतया मालुम होती है कि वे राजनीति से सर्वथा अनभिज्ञ थे। आमात्य को राजा के साथ उसी तरह का व्यवहार करना चाहिये जिस तरह एक भक्त भृत्य अपने स्वामी के साथ करता है। मन्त्रणा भर देने का आमात्यको अधिकार है, वह राजा को अपनी बात मनाने के लिये बाधित नहीं कर सकता परन्तु सालिम के सभी काम स्वेच्छाचारिता से परिपूर्ण थे। वह अवस्था में भी महारावलजी से कम था। शास्त्र में लिखा है कि राजा अपने से अल्प वयस्क मनुष्य को कदापि प्रधान आमात्य का पद न दे। युवा आमात्य कितना ही धर्म्मात्मा, नीतिपालक, विश्वस्त और स्वामिभक्त क्यों न हो उस के ऊपर राज्य का समस्त भार छोड़ कर निश्चिन्त न बैठ जाय क्यों कि जो राजा नियोगियों के हाथ में राज्यभार देकर स्वयं विषयवासना में फँस जाता है उस का राज्य उस के मन्त्रियों द्वारा ही नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। नीतिशास्त्र में लिखा भी है कि—

नियोगि हस्तार्पित राज्य भाराः
स्वपन्ति ये स्वैर विहार साराः॥

विडाल वृन्दार्पित दुग्ध पूपाः ।
स्वपन्ति ते मूढधिपः क्षितीन्द्राः ॥

अर्थात् जो राजा आमात्य के हाथ में राज्य की समस्त शक्ति
को सौंपकर स्वयं आमोद प्रमोद में निमग्न रहता है वह
अविवेकी मानों अपने भोजनार्थ बनवाये गये स्वादिष्ट दूध
पूप बिल्लों के पहरे में रख कर आराम करता है।

सालिम अल्पवयस्क होने के साथ २ मानी, श्रौत और
चिरसेवक भी था। वह सर्वदा अपने को महारावल का
महोपकारी प्रमाणित करके खूबही मनमानी करता था।
महारावलजी उस के अनर्थों को भी राज्य के हित के लिये
तथा अपने चिरजीवन के लिये अत्यन्त आवश्यकीय और
परमोपयोगी समझ ते थे। वह राजहितैषिता के व्याज
से दिन प्रति दिन अपनी स्वेच्छाचारिता को बढ़ाता ही गया।
उस ने खोज २ कर, अपने पिता की हत्या करने में सहायता देने
वाले प्रत्येक भाटी सामन्त को ही नहीं किन्तु राज्य के भावी उत्त
राधिकारी, महारावल के ज्येष्ठ पुत्र (रायसिंहजी) के दोनों
कुमारों (अभयसिंह और जालिमसिंह,) को वृद्ध महारावल
की विद्यमानता में ही विष द्वारा मरवाडाला।

उस ने महारावल के कनिष्ठ पुत्र जेतसिंहजी के तृतीय पुत्र
बालक गजसिंह को राज्य का भावी उत्तराधिकारी उद्घोषित
करके अन्यान्य राजकुमारों की हत्या करने का विचार किया।
सालिम के इस गूढ़ दुरभिप्राय से पूर्ण अभिज्ञ हो कर गजसिंह
के भ्राता- जेतसिंहजी के अन्यान्य कुमार- तेजसिंह, देवीसिंह
केशरीसिंह, और फतहसिंह आदि- अपनी प्राणरक्षा के लिये
बीकानेर तथा जोधपुर को भाग गये।

इस प्रकार कुटिल सालिम ने अनेक षड्यन्त्रों से सामन्त
और राजपरिवार को शक्तिहीन करके भाटी राज्य की

समृद्ध प्रजा को लूटना प्रारम्भ किया। उस के अनुचित करों और प्रबल अत्याचारों से उत्पीड़ित हो कर भाटी राज्य की अति समृद्ध प्रजा– पल्लीवाल और माहेश्वरी लोग– स्वदेश को छोड़ कर विदेश चले गये। परन्तु उस समय स्वदेश को परित्याग कर जाती हुई प्रजा की भी बडी बुरी दशा होती थी। स्वदेश में तो सालिम उन को लूटता ही था, परन्तु सालिम से हृताधिकार क्रोधित और बुभुक्षित भाटी सामन्त, अवशिष्ट द्रव्य को लेकर राजधानी से जाती हुई असहाय प्रजा के सर्वस्व तक का ही अपहरण कर लेते थे।

श्रीकृष्णचन्द्र की पवित्र सन्तति विश्वविदित यदुवंश के अन्तिम स्वाधीन नरपति महारावल मूलराज का दीर्घ जीवन-वृत्तान्त उन की साहसहीनता और राजनैतिक अनभिज्ञता का पूर्ण परिचायक है। उन की अकर्मण्यता से इस अति प्राचीन भाटी राज्य की विस्तृत सीमा अत्यन्त संकुचित हो गई। यद्यपि महारावल मूलराजजी के पितामह महारावल जसवन्त-सिंहजी के शासनकाल में भाटी राज्य की उन्नति का मार्ग अवरूद्ध हो गया था परन्तु जसवन्तसिंहजी के शासन कालीन भाटी राज्य की अति विस्तृत सीमा की शान्तिप्रिय महारावल मूलराज के राजत्वकालीन सीमा से तुलना करने पर इस प्राचीन राज्य की परिस्थिति में पृथ्वी और आकाश का अन्तर मालुम होता है।

महारावल जसवन्तसिंहजी के समय में इस राज्य की उत्तरीय सीमा मुलतान के समीप बहने वाली गाडा नदी पर्य्यन्त थी, पश्चिम में पञ्चनद (पंजाब) और सिन्धप्रान्त का समस्त उपजाऊ प्रदेश (खैरपुर, बहावलपुर, देरावर, अहमदपुर, सखर और शिकारपुर के आस पास की जमीन)

इस राज्य में सम्मिलित था, दक्षिण में धाट प्रदेश के समीपवर्ती स्याकोटड़ा शिव और बाड़मेर आदि वाणिज्य के प्रसिद्ध नगर इस राज्य के मध्यभाग में थे। पूर्व में पोकरन, फलोधी आदि प्रदेश भी इस राज्य में थे परन्तु इस समय ये सब प्रदेश जोधपुर राज्य में हैं और उत्तर पश्चिम का समस्त उपजाउ भाग बहावलपुर नामक नवीन राज्य में परिणित हो गया। महारावल मूलराजजी ने ५८ वर्ष पर्य्यन्त राज्य किया उन के राजत्व काल में उन की आज्ञा से जैसलमेर में वैष्णव (वल्लभ) मत का बहुत प्रचार होगया। उन्हों ने बहुत से उत्तमोत्तम, दर्शनीय और भव्य वैष्णवमन्दिर तथा मूलराजसागर तथा मूल तालाब आदि सुरम्य सरोवर भी बनवाये। महारावल साहसहीन होने पर भी बुद्धिमान और विद्याप्रेमी थे। उन्हों ने कई व्यासकुमारों को विद्याध्ययन करवाने के लिये राज की तरफ से काशी, गुजरात आदि प्रदेशों को भेजा था। वे कविता के अत्यन्त प्रेमी थे। उन्हों ने जयपुरादि देशों से अच्छे २ विद्वान् बुलाकर अपने पास रखे थे। वे समय २ पर अपनी सरस कविताओं से महारावल के हृदय को प्रसन्न करते थे। महारावल ने अपने पार्श्ववर्ती कवियों से अपने नाम से अनेक ग्रन्थ निर्माण करवाये थे मूलविलास, कीर्तिलक्ष्मीसम्वाद, आदि ग्रन्थों के नाम एतद्देशीय जनता में परम प्रसिद्ध हैं।

उन्हों ने अन्तावस्था में अपने राजत्व काल में ही अपने राज्य की परम अवनति देख कर उस को फिर उन्नत करने का विचार किया। इस समय भारतवर्ष भर में अशान्ति छाई हुई थी। मुगल बादशाहत छिन्नभिन्न हो गई थी और बृटिश गवर्नमेण्ट का प्रताप बढ़ रहा था। इस समय प्रत्येक शक्तिशाली राजा

अपने बाहुबल से निर्वल राजा के प्रदेश को अपने अधिकार में कर रहा था। वृद्ध महारावलजी ने भी इस अवसर को अपने हाथ से खाली न जाने दिया। उन्हों ने सम्वत् १८६६ में बहुत समय से छिन्नभिन्न हुई भाटी सेना को अच्छी प्रकार संगठित करके अपने राज्य के पश्चिमोत्तर प्रदेश को हड़पनेवाले यवन-गण को दमन करने के लिये भेजी। भाटी सेना की प्रवलता को देख कर दीनगढ़ का अधिपति वहादुर खां का पुत्र अलीखां महारावल जी से सन्धि करने की अभिलाषा से जैसलमेर चला आया। उस ने दीनगढ़ दुर्ग और २५०००) मुद्रा महारावलजी को समर्पण करके उन्हें सन्तुष्ट किया। दीनगढ़ का समीपवर्ती प्रदेश चिरकाल से भाटीराज के अधिकार में चला आरहा था परन्तु अली खां के पिता ने कपटपूर्वक उक्त प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया था। महारावलजी ने अली खां से दीन-गढ़ को छीन कर पुनः अपने अधिकार में करके उस का नाम कृष्णगढ़ रक्खा।

महारावलजी ने उस विजयी सेना को नहवरगढ़ पर आक्रमण करने लिये भेजदी। भाटी सेना पांच मास तक धीरता के साथ उस दुर्ग को घेर कर लड़ी। दुर्गस्थ वीर आत्म-समर्पण करना ही चाहते थे कि उसी समय महारावलजी को यह सूचना मिली कि दिल्ली आगरा आदि मुगलसम्राट् की राज-धानियों पर वृटिशगवर्नमेण्ट का स्थायी अधिकार हो गया है। और राजपूताने के सभी महाराजाओं ने वृटिशगवर्नमेण्ट के साथ स्थायी सन्धि करली है। सन्धि वन्धन से आवद्ध हो कर गवर्नमेण्ट ने अन्य राजा से छीने गये प्रत्येक राजा के प्रदेश को पुनः उसी को दिलवा दिया है। इस विश्वास पर आरूढ़ हो कर महारावल ने नहवर पर आक्रमण करने वाली सेना को पीछी

बुलवाकर तत्काल ही महाशक्तिशाली गवर्नमेण्ट के साथ सन्धि करने का विचार किया।

महारावल का प्रधान मंत्री महता सालिमसिंह अत्याचारी और स्वार्थपरायण होने पर भी पूरा राजनीतिज्ञ था। उस के अद्भुत जीवनचरित्र से यह बात निर्विवाद प्रमाणित होती है। उस ने अपनी स्वेच्छाचारिता से महारावलजी के राज्य में अनेकों अनर्थ कर डाले परन्तु समय २ पर उस ने शत्रुओं के प्रबल आक्रमण से इस राज्य की अच्छी तरह से रक्षा की। उस ने कई बार अपने बुद्धिपूर्ण कार्यों से भाटी राज्य का गौरव अडिग और अक्षुण्ण रक्खा। उस के रहस्यमय जीवनवृत्तान्त को सुनने से हमारा उपरोक्त कथन अक्षरशः सत्य प्रमाणित होगा।

अस्तु इस समय महारावलजी को किसी वाहरी शत्रु के आक्रमण करने का भय भी न था परन्तु तो भी उन्हों ने सालिम की सम्मति से गवर्नमेंट के साथ अपने आप सन्धि करने का विचार किया। वीर राजपूत स्वभाव से ही स्वतन्त्रता के अभिलाषी होते हैं और सालिम राजपूताने के तत्कालीन समस्त राजमन्त्रियों से विशेष नीतिज्ञ था। फिर उस ने महारावलजी को निष्प्रयोजन वृटिश सरकार की वश्यता स्वीकार करने की सम्मति क्यों दी? जैसलमेर की तत्कालीन परिस्थिति पर गम्भीरता के साथ दृष्टि डालने से इस का गूढ हेतु अपने आप मालुम हो जाता है।

स्वार्थी सालिम ने महारावल के प्रधान सहायक मालदेवोतों के अधिपति को तथा समस्त राजकुमारों को अनेकों कूट उपायों से मरवाडाला है इस से समस्त सामन्त महारावल से अप्रसन्न होकर अन्य रियासतों में लूट खसोट करके अपना

जीवन निर्वाह करते हैं। जैसलमेर के समीपवर्ती जोधपुर और बीकानेर के महाराजाओं ने पहले से ही बृटिशसिंह के साथ सन्धिबन्धन स्थापित कर रक्खा है ऐसी अवस्था में यदि वीर मालदेवोत केलन वरसिंह आदि भाटीगण उपरोक्त राज्यों में से लूट खसोट करके अपने प्रदेश में चले आवें तो उन २ प्रदेशों के नरेश तत्कालीन बृटिशगवर्नमेंएट की सहायता लेकर भाटीवीरों को दमन करने के बहाने से जैसलमेर पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर सकते है। मालदेवोत तेजमालोत आदि अति साहसी वीर "किञ्चिन्नास्तीति साहस" के न्याय से उस समय केवल दस्यु वृटिश से ही अपना जीवन निर्वाह करते थे। उन को वश में करने के लिये सालिम ने बहुत से प्रयत्न किये परन्तु जब वे किसी प्रकार भी उस के वश में न आये तब चतुर सालिम ने वृटिश गवर्नमेंएट से सन्धि करके इस राज्य को बाहरी राजाओं के आक्रमण से बचाने तथा उद्दत सामान्तों को दमन करने के लिये यह अनोखा उपाय ढूढ निकाला। सालिम की सम्मति से महारावलजी ने अपनी तरफ से पूर्ण अधिकार देकर भाटी दौलत सिंह तथा थानवी मोतीराम (पुष्करणा ब्राह्मण) को दिल्ली भेजे। उन्हों ने ईष्ट इण्डिया कम्पनी की तरफ से नियुक्त तत्कालीन भारत के गवर्नर जनरल मार्किस आव् हेष्टिंग्ज से पूर्ण अधिकार प्राप्त मिष्टर चार्लस् थियोफिलस मेट कॉफ के निम्न लिखित पांच धराओं से सयुक्त संधिपत्र पर हस्ताक्षर कर के उस को स्वीकार कर लिया।

१— माननीय अंग्रेज कम्पनी और जैसलमेर के अधिपति महारावलजी श्रीमूलराजजी बहादुर और उन के उत्तराधिकारी तथा उन के आधीनस्थ समस्त सामन्तगण में चिर-

स्थाही मित्रता, सन्धिवन्धन और समान स्वार्थता रहेगी—

२— महारावल मूलराज के वंशधर ही उत्तराधिकारी क्रमशः राजसिंहासन पर बैठेंगे--

३— जैसलमेर राज्य का पतन करने के लिये यदि कोई राजा आक्रमण करे अथवा उक्त राज्य में कोई बड़ाभारी झगड़ा उपस्थित हो जाय और वह जैसलमेर के महाराज से दूर न हो सके तो गवर्नमेंट उक्त राज्य की रक्षा के लिये अपनी शक्ति के अनुसार सहायता देगी—

४— महारावल और उन के उत्तराधिकारीगण तथा उन के आधीनस्थ समस्त सामन्तगण अटल नियम के साथ अश्रितरूप से वृटिश गवर्नमेंट के सहायक होंगे और वृटिश गवर्नमेंट का आधिपत्य मानेंगे—

५— यह, पांच धाराओं से युक्त, सन्धिपत्र मुझ चार्लस् थियो फिलस् मेट काफ और थानवी मोतीराम और ठाकुर दौलतसिंह का निर्धारित और हस्ताक्षर संयुक्त तथा दोनों ओर की मोहरों से मण्डित है। महा महिम गवर्नर जनरल और महाराजाधिराज महारावल मूलराज वहादुर के स्वीकार किये जाने पर आज की तारीख से छः सप्ताहों के वीच में दोनों तरफ के लेने देने का कार्य समाप्त हो जायगा।

थानवी मोतीराम और ठाकुर दौलतसिंह के तथा साहव वहादुर सी. टी मेटकॉफ के हस्ताक्षरों से युक्त उपरोक्त सन्धिपत्र ई० सन् १८१८ के दिसम्बर मास की वारहवीं तारीख को लिखा गया था। महारावल श्रीमूलराजजी ने ५८ वर्ष पर्य्यन्त स्वाधीनता पूर्वक राज्य करके ई० सन् १८२० में सुरपुर को प्रस्थान किया अर्थात् उपरोक्त सन्धि के पश्चात् वे केवल दो वर्ष पर्य्यन्त ही जीवित रहे।

उन के परलोकवास के अनन्तर महामन्त्री सालिम के मनोनीत युवराज १४६ गजसिंह ने, जैसलमेर के राज सिंहासन पर विराजमान होकर, विक्रम सम्वत् १८७६ में अत्यल्पावस्था में महारावल के पद को अलंकृत किया। यद्यपि हिन्दू-धर्म्म-शास्त्रानुसार तथा जैसलमेर की पूर्व परम्परागत प्रथा के अनुसार महारावल मूलराजजी के तृतीय पुत्र (प्रथम पुत्र रायसिंहजी को उन के पुत्र और पौत्रों सहित सालिम ने मरवाडाला था तथा महारावल के द्वितीय पुत्र लालसिंह युवावस्था में ही अपने मातामह किशनगढ़ महाराज के यहां घोड़े से गिर कर मर गये थे) जैतसिंह के ज्येष्ठ पौत्र तेजसिंह का सत्व था परन्तु कुटिल मन्त्री ने अपने स्वार्थसाधन के लिये राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी को राज्य से वंचित करके जैतसिंह के तृतीय कुमार गजसिंह को राजगद्दी पर बैठाया। सालिम की इस अनुचित कार्य वाही से बहुत समय के लिये तेजसिंहजी तथा उन की सन्तति का राजसत्व जाता रहा।

बालक गजसिंह को रावल बना कर सालिम पूर्ण स्वतन्त्र होगया उस ने अल्प ही समय में अनेक प्रकार के अत्याचारों से दो करोड़ से भी अधिक द्रव्य एकत्रित कर लिया। उस ने बालक महारावल को अपने वश में करने के लिये अनेक उपाय किये। उस ने अपने आज्ञानुवर्त्तीयों को ही महारावल के अंगरक्षक नियत किये। सालिम से नियुक्त हुये पार्श्वचर महारावल गजसिंह के आकार इंगित चेष्टा और नेत्रवक्र के विकारों से उन के मनोभावों को सालिम से निवेदन करते थे। उस ने महारावल पर अपना पूर्ण प्रभाव डालने के लिये उन का विवाह उदयपुर के महाराणा भीमसिंहजी की कन्या रूप

कुँवर के साथ करवाया। महाराणाजी ने अपनी दूसरी दोनों कन्याओं का विवाह बीकानेर के महाराज रतनसिंहजी और किसनगढ़ के महाराज मोहकमसिंहजी से किया था। इस विवाहोत्सव के उपलक्ष्य में तीनों स्वाधीन नरपतियों के एकत्रित होने से उदयपुर नगर में प्रतिदिन आनन्द के बाजे बजने लगे। चतुर सालिम ने महारावल के विवाहोपलक्ष्य में त्याग आदि में मुक्त- हस्त हो कर अपार द्रव्य लुटाया। इस महोत्सव के उपलक्ष्य में ही राजत्रय के सैनिकों में एक दिन क्षुद्र बात के लिये आपस में वाद विवाद होगया। यह विवाद यहा तक बढ़ा कि अन्त में दोनों राठौड राजाओं के सैनिकों ने एकत्रित होकर महारावल के सैनिकों पर आक्रमण करना चाहा परन्तु महाराणाजी ने बीच में पड़ कर अपनी राज-धानी में राठौडों और भाटियों के विवाद को किसी प्रकार से शान्त कर दिया। विवाह के अनन्तर चार मास तक महा-रावलजी उदयपुर में ही विराजमान रहे फिर नवपरणीता चित्तौराधिपति महाराणा भीमसिंहजी की नन्दिनी को अपने साथ लेकर स्वदेश को पधारे।

महारावल ने राजधानी में पदार्पण कर के देखा कि उद्दण्ड सालिम के अत्याचारों से राजधानी की समस्त प्रजा व्याकुल हो रही है। सालिम ने अपने रहने के लिये गगनचुम्बी प्रासाद बनवा लिया है। उदयपुराधिपति की राजकुमारी से महारावल के विवाह सम्बन्ध को वह जैसलमेरीय जनता के प्रति केवल मात्र अपने ही उद्योग का फल जतला कर सर्वदा के लिये अपने को महारावलजी का परमोपकारी प्रमा-णित करना चाहता है। उसने राज्य के समस्त कर्मचारी

मण्डल को अपने हस्तगत कर लिया है। होनहार और अभ्युदयाभिकांक्षी महारावलजी ने उस के उद्धताचरणों पर दृष्टि डाल कर निश्चय किया कि जब तक मानी सालिम प्रधान आमात्य के महत्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित रहेगा तब तक राज्य में सुख और समृद्धि की आशा करना केवल दुराशामात्र है। बात २ में वह सर्वदा अपने को श्रौत (अर्थात् जैसलमेर के प्रधानामात्य के पद पर परम्परा से हमारे कुल का ही पुरुष रहता आया है इस से मंत्री पद वंशानुक्रम से हमारी सन्तति को ही मिलना चाहिये) और राज्य का परमोपकारी प्रमाणित करता है अतः नीतिशास्त्र के अनुसार उस को मन्त्रीपद से पृथक् किये विना हमारा अभीष्ट कभी सिद्ध नहीं हो सकता यह सोच कर महारावलजी ने खींयाँ जाति के आनासिंह नामक भाटी को उस के वध के लिये नियत किया।

विक्रमाब्द १८८० की कार्तिक कृष्णा एकादशी के दिन सालिम न्यायालय से निकल कर विश्रामार्थ मोतीमहल नामक परम रमणीय राजप्रासाद में सुखपूर्वक लेट रहा था उसी समय उस के शरीर पर उक्त भाटी ने अपनी तीक्ष्ण तलवार का प्रहार किया, भाटी की तलवार के प्रहार ने अति बली सालिम के विशाल शरीर में विषम आघात पहुँचाया। आना तलवार का दूसरा वार करना चाहता ही था कि इतने में सालिम के पार्श्ववर्तियों ने उस को धर दबाया। सालिम उसी समय अपने अंगरक्षकों के साथ घर को चला गया। वह छ: मास पर्य्यन्त आना की तीक्ष्ण तलवार से उत्पन्न हुई विषम वेदना को भोगता रहा। जब उस ने अच्छी तरह समझ लिया कि जीवन के दिन अब इने गिने ही हैं तब वह अपने अन्यायोपार्जित द्रव्य की रक्षा करने का उपाय सोचने

लगा। उस ने अपने संचित द्रव्य के अधिकांश को अपने साले रूपसी धाटी को देकर उसे जैसलमेर से बाहिर भेज दिया और अवशिष्ट द्रव्य भी ब्राह्मण तथा चारण आदिकों को देकर उन्हें भी विदेश भेज दिया। उस ने बारह वर्ष में दो करोड़ मुद्रा एकत्रित करली थी। उस ने इस समग्र धनराशि को अपने परिचितों तथा सम्बन्धीयों के हाथ में सौंप कर सुरक्षित समझा। उस को मरते समय इस बात का पूर्ण विश्वास हो गया था कि मेरा समग्र द्रव्य राज के खजाने में न जाकर मेरी सन्तति के पास ही रहेगा तथा मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरे उत्तराधिकारी ही प्रधानामात्य के पद पर नियुक्त होंगे। वह सम्वत् १८८१ की चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को इस ससार से सर्वदा के लिये चल बसा।

उस की मृत्यु के अनन्तर महारावल ने उस के पुत्र को किसी अकथनीय अपराध के लिये कारागार में डाल दिया तथा उस के अन्यायोपार्जित द्रव्य को ले जाने वालों ने अपने आप हजम कर लिया। यद्यपि स्वेच्छाचारिता और स्वार्थपरायणता की अति मात्रा तथा राजकुलविध्वंशकारी अत्याचारों ने सालिम के उल्लेखनीय जीवनचरित्र को पूर्णतया कलंकित कर दिया है तथापि उस की अमात्यकालीन विचित्र घटनाएं उस के राजनैतिक चातुर्य्य को, उस के राजपूतोचित अदम्योत्साह को और उस की प्रखर तेजस्विता को भली प्रकार प्रमाणित करती है। प्रचण्डकाय सालिम ब्राह्मणभक्त तथा अत्यन्त दानी था। उस की मृत्यु के पश्चात् जैसलमेर रियासत को ऐसा बुद्धिमान्, तेजस्वी, प्रभावशाली और पूर्ण राजनीतिज्ञ अमात्य प्राप्त करने का सौभाग्य अभी तक भी प्राप्त नहीं हुआ है। सालिम की मृत्यु के पश्चात् उस के सहकारियों ने अल्प

समय के लिये राज्य भर में विषम विद्रोह मचा दिया। सालिम के पक्षावलम्बी कतिपय भाटी सरदार और सोढ़ा जाति के राजपूतों ने महारावलजी के राज्यान्तर्गत खाभा आदि गाँवों में लूट पाट करनी आरम्भ करदी। परन्तु बुद्धिमान् महारावल ने अपने अतुल पराक्रम से समस्त उपद्रवकारियों को पूर्णतया परास्त कर के उन्हें अपने वश में कर लिया। महारावलजी अपने राज्य के आभ्यन्तरिक उपद्रवों को उपशमित करके राजधानी को लौट ही रहे थे कि इतने में वारू टेकरा आदि प्रदेशों के भाटी सामन्तों ने बीकानेर महाराज के साथ विषम विसम्वाद उपस्थित कर दिया। मालदेवोत तथा विहारी दासोत भाटी सरदार वारम्बार बीकानेर राज्य में लूट खसोट मचाया करते थे इस से बीकानेर के महाराजा का प्रकोप इन पर दिन प्रति दिन बढ़ता ही गया, वे इन को दमन करने का उपाय सोच ही रहे थे कि इसी अवसर में साहसी विहारी दासोतों ने उन की रियासत में से सांढियों के समूचे वर्ग को अपहरण कर लिया। क्रुद्ध राठौड राजा ने विहारी दासोतों को दमन करने के वहाने से अपने अधराजिये महाजन के अधिपति ठाकुर वैरीसालजी तथा अभयसिंह और अमरचन्द सूराणा के नेतृत्व में दश सहस्र सेना एकत्रित कर के जैसलमेर पर आक्रमण करने के लिये प्रेषित की।

राठौड़ राज्य की प्रवल सेना मार्ग में आने वाले भाटी राज्य के समस्त ग्रामों को विध्वंश करती हुई प्रवल वेग से जैसलमेर की तरफ आने लगी।

महारावल ने निष्प्रयोजन रक्तपात करना अनुचित समझ कर उसी समय अपने कुलपुरोहित विहरीलालजी को अपने सीमान्त प्रदेश के अन्तिम नगर वाप में उपद्रव मचाती

हुई राठौड़-सेना को रोकने के लिये भेजा। महारावलजी की आज्ञा के अनुसार कुलपुरोहितजी ने राठौड़ सेना के अधिपति से विनय पूर्वक कहा कि महारावलजी निष्प्रयोजन युद्ध करना नहीं चाहते। राठौडराज की सांढियों के अपहरण कर्ता-विहरीदासोतगण-को समुचित दण्ड दिया जायगा तथा अपहृत सांढियों का वर्ग या उन का समुचित मूल्य राठौड़ राजा की सेवा में शीघ्र ही प्रेषित कर दिया जायगा। परन्तु राठौड सेना के अति दृप्त अधिपति के हृदय पर पुरोहितजी के उपरोक्त विनीत वचनों का जरासा भी प्रभाव न पड़ा।

विजयाभिलाषिणी राठौड़ सेना पौकरन के अधिपति की सेना से सम्मिलित हो कर भाटी राज्य को छिन्न भिन्न करने की अभिलाषा से अप्रतिहत गति के साथ जैसलमेर की तरफ आने लगी। इस आक्रमणकारी बृहत्सेना को रोकने के लिये इस समय महारावल के पास सुसंगठित सेना का सर्वथा अभाव था। उन्हों ने बड़ी कठिनता से एक सहस्र वीर उत्तेजित राठौड़ सेना के प्रतिकार के लिये एकत्रित किये और तत्काल ही समस्त राज्य में स्वदेश रक्षा के लिये प्रत्येक शस्त्रधारी को आह्वान करने के लिये अपने अभ्रंलिह दुर्गप्रासाद के अत्युच्च भाग में रक्खी हुई रणभेरी बजवाई। उस बृहत् रण वाद्य के घोर शब्द से जैसलमेर पर विषम आपत्ति आई समझ कर राजधानी से लगभग १५ कोश पर्य्यन्त की दूरी पर रहने वाले समस्त भाटी सोढा और मुसलमान आदि वीर अपने २ शस्त्रों से सुसज्जित होकर महारावलजी की सेवा में उपस्थित हुये। महारावलजी ने उसी समय अपने ज्योतिषी व्यासजी से अपनी सेना को जैसलमेर के पास आती हुई राठौड़ सेना की गति को रोकने के लिये अपनी सेना के

कूच करने का मुहूर्त मांगा परन्तु व्यासजी ने उस समय को सेना के प्रस्थान के लिये अशुभ बतलाया इस से आस्तिक महारावल ने समवेत सेना को अपनी राजधानी में ही रख छोड़ी इस प्रकार पांच सात दिवस में द्रुतगति से मार्गस्थ ग्रामों को विध्वंश करती हुई राठौड़ सेना जैसलमेर के अति समीप—केवल पांच कोश की दूरी पर बासणपीर ग्राम के पास ही चली आई। उस ने भाटी राज्य के बड़ागाम, भोजक, हद्दा और देवकोट आदि प्रसिद्ध नगरों को लूट कर अप्रतिहत गति से जैसलमेर के अति समीपवर्ती बासणपीर ग्राम पर पड़ाव डाला।

विजयोन्मत्त राठौड सेनापति ने समझा कि हमारा सामना करने के लिये अब तक कोई भी भाटी वीर उपस्थित नहीं हुआहै ऐसी दशा में हम प्रातः काल अनायास ही राजधानी पर आक्रमण कर के उस को अपने हस्तगत कर लेंगे। ऐसा विचार कर समस्त राठौड़ सेना आनन्द पूर्वक रात्रि के समय वहीं सो गई।

राजधानी के अति निकट ही डेरा डाल कर पड़ी हुई राठौड सेना को देख कर चिन्ताग्रस्त महारावल ने झुंझला कर व्यासजी से पूछा कि न मालुम शुभमुहूर्त कब आवेगा ? कल प्रातः काल ही राजधानी का सर्वनाश होना चाहता है।

व्यासजी श्रेष्ठ मुहूर्त देखने के लिये अपने चित्त को एकाग्र कर ही रहे थे कि इतने ही में उन को राजप्रासाद के गवाक्ष में से अधोभाग के चत्वर प्रदेश में दो काले सांप परस्पर लड़ते हुये दिखलाई दिये। वे उसी समय एक को अपने पक्ष का और दूसरे को विपक्ष का संकेतित करके उन की लड़ाई को देखने लगे। उन के देखते ही देखते विपक्षी विषधर

आघातित होकर वहाँ से भाग गया। व्यासजी ने मुसकरा-कर महारावलजी से कहा कि आप की विजय अवश्यम्भावी है, आप इसी समय स्वसेना को शत्रुगण पर आक्रमण करने के लिये प्रेषित कीजिये। सेना प्रथम से ही सन्नद्ध थी वह केवल महारावल की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही थी।

महारावल की आज्ञा प्राप्त करके खोसों के जमींदार साहव खां ने अपने पुत्र और पांचसौ वीर सैनिकों के साथ अर्द्ध रात्रि के समय सुनिद्रित राठौड़ सेना के बीच में घुस कर उस पर भयंकर आक्रमण किया और भाटी सामन्तों ने अपने २ दल के साथ उस को चारों तरफ से घेर लिया।

सहसा अपने चारों तरफ शत्रुगण के रणवाद्य की गम्भीर ध्वनि को सुन कर प्रसुप्त राठौड़ों ने उसी समय शस्त्र धारण किया। उस अन्धतम परिपूर्ण अर्द्ध रात्रि में अर्द्धोन्निद्र राठौड़ शत्रु भ्रम से परस्पर तीव्र प्रहार करने लगे, ज्योंहीं जरा जरासा प्रकाश होने लगा तब तो राठौड़ सेनापति को मालुम होने लगा कि उस के योद्धा भ्रमवश आपस में ही कट २ कर मर रहे हैं। सेनापति ने उन को शस्त्र प्रहार बन्द करने का आदेश दिया परन्तु राठौड़ सेना के बीच में घुसा हुआ वीर साहव खां संहारमूर्ति धारण करके राठौड़ सेना को नष्ट भ्रष्ट करने लगा। साहव खां के पांच सौ वीर सैनिकों के तीक्ष्ण प्रहारों के आघातों से विताडित राठौड सेना भयत्रस्त होकर चारों तरफ से भागने लगी परन्तु इस नवीन प्रदेश के प्रस्तरमय विषम मार्ग से अपरिचित होने के कारण वह थोड़ी सी दूरी पर घेरा डाले हुये भाटी सरदारों की तीक्ष्ण तलवारों का शिकार होने लगी।

इस प्रकार साहव खां के प्रथम आक्रमण से ही राठौड़

सेना का प्रधान संचालक अमरचन्द सुराणा पांचसौ वीरों के साथ बासणपीर के विकट रणक्षेत्र में मारागया।

चारों तरफ अपने सैनिक गणों की अगणित लाशें देख कर राठौड़ सेना छिन्न भिन्न हो कर भाग गई। विजयी भाटियों ने रणोन्मत्त होकर उन का पीछा किया। अब युद्ध के समाचार समस्त राज्य में अच्छी तरह फैल गये इस से सिन्ध प्रान्त की सीमा पर्य्यन्त रहने वाले समस्त भाटी तथा महारावल के भक्त यवन भी दिन प्रति दिन राठौड़ सेना का पीछा करने वाली भाटी सेना में आकर सम्मिलित होने लगे इस से भाटी सेना की सख्या में आशातीत वृद्धि होगई।

इस प्रकार इस परिवर्द्धित भाटी सेना ने अपने राज्य की सीमा से थोड़े ही दिनों में समस्त शत्रुगण को निकाल कर पोहकर्ण प्रदेश पर आक्रमण किया। विजयोन्मत्त भाटी सेना ने स्वल्प समय में ही समस्त पोहकर्ण प्रदेश को विध्वस्त कर दिया। परन्तु भाटी खेतसिहोत मेघसिंहजी की बहन का विवाह सम्बन्ध पोकर्ण के तत्कालीन अधिपति के साथ हुआ था। मेघसिंहजी ने अपनी बहन के कहलाने से उक्त दुर्ग से भाटी सेना को लौटा ली।

शत्रुगण के भाग जाने पर वापिस लौटती हुई भाटी सेना ने बीकानेर और पौकरण के बीच के थाट गाँव को लूट लिया।

विजयी साहब खां की वीरता से अत्यन्त प्रसन्न हो कर महारावलजी ने साहब खां को नकारे के साथ पालकी पर बैठा कर जैसलमेर के परम पुनीत और अति प्राचीन दुर्ग में बे रोक टोक चले आने का अति महत्वपूर्ण सन्मान प्रदान किया।

विक्रम सम्वत् १८८५ के लगभग भाटियों राठौड़ों का यह अन्तिम युद्ध हुआ था। बासणपीर पर की इस घटना का सूचक यह दोहा अभी तक भाटी राज्य में सर्वत्र प्रचलित है:—

ज्ञातों जुगों न जावसी आसी कह दिन याद।
भड़कमधों नहीं भूलसी बासणपी को वाद॥

इस घटना के पश्चात् सम्वत् १८६१ में महामहिम भारत गवर्नमेंट ने अपनी तरफ से साहब कर्नल ट्रिविलिम महोदय को भेजकर दोनों राज्यों की सीमा के मध्यवर्ती गिर राजसर तथा गड़ियाल में जैसलमेर और बीकानेर के दोनों महाराजाओं का मेल मिलाप करवा दिया।

राज्य संचालन सरीखे महत्वपूर्ण कार्य के लिये राजा को चतुर और राजनितिज्ञ अमात्य की प्रतिक्षण परमावश्यकता रहती है। अमात्य राजा का प्रतिबिम्ब है। अमात्यहीन राजा सैन्य शक्ति सम्पन्न होने पर भी अपने अभीष्ट साधान में सफलमनोरथ नहीं हो सकता परन्तु " नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता " अर्थात् राजा और प्रजा दोनों की भलाई करने वाला अमात्य बड़ी कठिनता से प्राप्त हो सकता है।

सालिम की अपमृत्यु के पश्चात् महारावल जी अपने राज्य के सर्वतन्त्रस्वतंत्र कर्त्ता हर्ता हो गये। परन्तु उन को अनेक प्रकार के अत्याचारों से अपने अवनत राज्य को पुनः उन्नतावस्था में लाने के लिये शीघ्र ही एक बुद्धिमान् कुलीन और पूर्ण राजनीतिज्ञ अमात्य की परमावश्यकता प्रतीत होने लगी। उन्हों ने अत्यन्त गवेषणा के साथ पुष्करिकर जातीय ईश्वरलाल नामक बुद्धिमान् विद्वान् तथा राजनीति-निपुण आचार्य्य को अपना प्रधान अमात्य बनाया। उन्हों ने उक्त चतुर मन्त्री की सम्मति

से भाटी राज्य के सीमान्त प्रदेशों में एकत्रित हो कर बृटिश इण्डिया तथा जोधपुर बीकानेर आदि रजवाडों में डाका डालने वाले दस्यु-दल को दमन करने के लिये पुरोहित सरदार मल्लजी के आधिपत्य में पांच सौ सुशिक्षित सेना एकत्रित कर के प्रेषित की। पुरोहितजी ने जोधपुरीय सेना के साथ अपनी सेना को सम्मिलित करके इन दोनों राज्यो में लूट खसोट मचाने वाले दस्युगण को अच्छी प्रकार से परास्त करके अपने वश में कर लिया। इस दस्युगण को निरस्त्र करने से जैसलमेर के समीपवर्ती इंग्रेजी इलाके मे चोरी का नामो निशान न रहा। महारावल के इस कार्य्य से अंग्रेजसरकार ने परम सन्तुष्ट होकर उन को एक श्लाघापत्र प्रदान किया।

सम्वत् १८८८ में करनल लाकेट साहब जैसलमेर में पधारे। येही प्रथम यूरोपियन है जिन्हों ने भाटी राजधानी को अवलोकन करने का प्रथमावसर प्राप्त किया था। सम्वत् १८९४ में लैडलो साहब ने जोधपुर और जैसलमेर राज्य के सीमा सम्बन्धी विवाद का निर्णय किया। महारावलजी ने काबुल के युद्ध में बृटिश सरकार की ऊंठ आदि से अच्छी सहायना की। महारावलजी की उपर्युक्त सहायता से प्रसन्न हो कर अंग्रेज सरकार ने भी वहावलपुर के नवाब से इस राज्य के शाहगढ़ और घोटडू नामक प्रदेशों को भाटी राज्य में पुनः सम्मिलित करं वाने में वड़ी सहायता दी। अंग्रेज सरकार की सहायना से उन्हों ने वेरोकटोक उक्त दोनों दुर्गों पर अपना अधिकार जमा लिया। महारावलजी ने शाहगढ़ का नाम बलदेवगढ़ और घोटडू का नाम देवगढ़ रख कर उन दोनों दुर्गों में अपनी तरफ़ से पुरोहित सरदार मल्लजी को शासक नियुक्त कर दिया।

महारावल ने नवीन प्रधान मन्त्री की सुसम्मति से राज्य कार्य्य को अच्छी प्रकार से सम्पादन किया। उन के सुशासन से प्रजावर्ग की भक्ति महारावलजी में दिन दूनी और रात चौगुनी होने लगी। महारावलजी अल्प ही समय में अपने सद्गुणों से अपने समस्त प्रजावर्ग के परम-भक्ति-भाजन बन गये।

महारावलजी ने अपने नाम से गजरूप सागर नामक परमरमणीय तथा विस्तृत सरोवर और उसी के पास ही एक सुरम्य उद्यान निर्म्माण करवाया, तथा दुर्ग में एक दर्शनीय गजविलास नामक प्रासाद बनवाया। महारावलजी अपने प्रधान अमात्य ईश्वरलालजी आचार्यजी की कार्य्य कुशलता से अत्यन्त प्रसन्न हुये। उन्हों ने आचार्यजी की स्वामिभक्ति से प्रसन्न हो कर उन को व्यास की पदवी प्रदान की। पुष्टिकर जाति में व्यासपद सर्वाधिक सम्मान-सूचक-पद है। इस पद को प्राप्त कर इस जाति के मनुष्य अपने को परम सौभाग्यशाली समझते हैं।

जैसलमेर, जोधपुर बीकानेर, कृष्णगढ़ और मालवदेश के महाराजाओं ने समय समय पर पुष्टिकर जाति के आचार्य, पुरोहित, बिसे रंगे आदि अपने राज्य के अत्युच्च कर्म्मचारी विप्रगण को व्यासोपाधि प्रदान करके उन्हें गौरवान्वित किया है। महारावल जी से व्यास पदवी प्राप्त करके प्रधान अमात्य परम सन्तुष्ट हुये।

महारावलजी (गजसिंहजी) के राजत्व काल में आचार्य्य जी (ईश्वरलालजी) ने अपने रहने के लिये एक अभ्रंलिह और सुरम्य प्रासाद तथा अपने नाम से एक मनोहर सरोवर बनवाया।

अमात्य महोदय को श्री गणेशजी का इष्ट था इस से उन्हों ने उस तालाव पर भगवान् हेरम्ब की भव्य मूर्ति स्थापित करके भाद्र पद की गणेश चतुर्थीका नवीन मेला इस रियासत में नियत किया।

महारावलजी के औरस से श्री राणावतजी में से विजेराज नामक पुत्र रत्न ने जन्म लिया परन्तु प्रजा के दुर्भाग्य से वह डेढ़वर्ष की अवस्था में ही इस संसार को छोड़कर चला गया इस से छत्तीस वर्ष पर्य्यन्त राज्य करके श्री महारावलजी के परलोकवास होने पर उन के लघु भ्राता केशरीसिंहजी के ज्येष्ठ कुमार रणजीतसिंहजी सम्वत् १६०२ में जैसलमेर के राजसिंहासन पर विराजमान हुये। उस समय नवीन महारावल की अवस्था केवल तीन वर्ष की थी इस से राज्य का समस्त अधिकार उन के पिता केशरीसिंह ने अपने हाथ में कर लिया। केशरीसिंहजी पढ़े लिखे न होने पर भी अत्यन्त तेजस्वी बुद्धिमान् नीतिज्ञ और वीर पुरुष थे। उन्हों ने अपने बाहुबल से स्वल्प काल में ही राज्य के समस्त आभ्यन्तरिक उपद्रवों को मिटा कर सर्वत्र सुख शान्ति स्थापित कर दी। उन के कठोर शासन के प्रभाव से सिंह और बकरी एक ही साथ चरने लगे। उन्हों ने कृषि की उन्नति के लिये लाखों रुपये व्यय करके राज्यभर में अनेक स्थानों में नवीन कूप तालाव, बंध और नाले खुद वाये।

महाराज केशरीसिंहजी के कठोर शासन तथा अनुचित करों से तङ्ग आकर राजधानी तथा रियासत की प्रजा ने कई वार स्वदेश छोड़ कर विदेश जाने का विचार किया परन्तु करों को उठा देने से तथा समय समय पर अपने अनुचित शासन के लिये पश्चात्ताप प्रकाशित करने पर

प्रजा में से कोई भी व्यक्ति उन की विद्यमानता में स्वदेश को छोड़ कर अन्यत्र नहीं गया।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि महाराज केशरीसिंह जी शारीरिक–वल–सम्पन्न होने पर भी अविद्वान् तथा उग्र स्वभाव के पुरूष थे। इस से समय २ पर वे विना सोचे समझे अपने मनमाना अनुचित कर प्रचार कर देते थे। उन्हों ने पार्श्ववर्ती दुर्बुद्धि चाटुकारों के कहने में आकर महारावल गजसिंहजी के परलोकवास के अनन्तर उन के परम प्रिय प्रधान ईश्वरलालजी पर क्रुद्ध होकर उन के साथ अत्यन्त असभ्यता का वर्ताव किया यहां तक कि उन्हों ने आचार्यजी की स्थावर और जगम सर्व प्रकार की सम्पत्ति राजकीय सत्व कायम कर दिया। उन्हों ने महारावल गजसिंहजी की तरफ से ब्रह्मभाव से पुण्यार्थ किये हुये आचार्य जी के प्रासाद को भी वापिस लौटा लिया। उन का यह कार्य वेद शास्त्र के अत्यन्त विरुद्ध तथा आर्य राजा के शिष्टाचार की सीमा के वाहिर हुआ। भाटी राज्य का धर्म्मात्मा और योग्य उत्तराधिकारी उन की इस शास्त्रविरुद्ध तथा अश्लाघनीय कार्य्यवाही पर अवश्यमेव समुचित ध्यान प्रदान करेगा।

महारावल रणजीतसिंहजी के समस्त शासनकाल में उन के पिता महाराज केशरीसिंह का ही प्राधान्य रहा। महारावलजी ने आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करने के अतिरिक्त शासनकार्य में कभी भी हस्तक्षेप नही किया, इस लिये उन के विषय में इस से अधिक कुछ भी नही लिखा जा सकता कि उन्हों ने महाजन के अधिपति ठाकुर अमरसिंहजी की कन्या से हरिसिंह और लालसिंह नाम के दो बालक उत्पन्न किये थे परन्तु वे दोनों ही बाल्यावस्था में ही परलोकवासी हो गये।

महारावलजी ने जयपुर निवासी भट्ट गोकुलनाथ जी को बुला कर अपने नाम से उन से "रणजीत रत्न माला" नामक भाषा ग्रन्थ बनवाया, तथा व्यास भीमजी तथा देवीदासजी को उन से वैद्यक विद्या का अध्ययन कर वाया।

रणजीतसिंहजी के राजत्वकाल में उन के पिता महाराज केशरीसिंहजी ने राज्य के कृषिविभाग की उन्नति के लिये रामघाट, कृष्णघाट, बगवाड़ी, काकनय, कल्याणघाट, विजंड़ासर आदि कई स्थानों में जल एकत्रित करने के लिये बंध बँधवाये। उन्हों ने अपने राज्य के शून्य प्रदेशों को आवाद करने के लिये जाट, विश्नोई आदि विदेशी प्रजा को बुला कर उन को अपने राज्य की उपजाऊ भूमि निश्चित वर्षों के लिये अल्प कर पर ही प्रदान की।

महाराज के उपरोक्त कार्यों से उन की राज्यहितैषिता अच्छे प्रकार से प्रकट होती है। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि महाराज केशरीसिंहजी परम पराक्रमी और महान् तेजस्वी पुरूष थे। यदि वे साक्षर होते तो इस राज्य की उन के हाथों महान् उन्नति होती परन्तु खेद का विषय है कि वे अधिक पढ़े लिखे न थे। परन्तु उन के प्रबल प्रताप से उन की विद्यमानता में इस राज्य में तस्करता का नामो निशान भी न रहा। वे सर्वदा दुर्बल के पक्षपाती रहते थे। वे दिन में एक बार सर्वदा प्रातः काल, मध्यान्ह वा सायकाल को, किसी भी समय अश्वारूढ या पैदल प्रच्छन्न वेश मे अकेले ही राजधानी में चक्कर लगाया करते थे।

एक दिन पूर्वान्ह में श्वेत वस्त्र धारण किये हुये वे जैसलमेर की अति विस्तृत और समृद्ध बाजार में हो कर अपने निवासस्थान को पधार रहे थे तब उन्हों ने देखा कि एक

परम तेजस्वी युवा भाटी अपने साथियों के साथ प्रत्येक अन्न विक्रेता की दूकान से गेहूं आदि अनाज की मुट्ठी भर कर और उस करतलस्थ अन्न को दूसरे हाथ के जोर से आटा बना कर सहचारीगण को अपने पराक्रम का परिचय देता हुआ तथा नवीन अन्न को पुराना वतला कर अन्न-विक्रेता का उपहास करता हुआ एक दुकान से दूसरी दुकान पर जा रहा है। महाराज स्वयं अत्यन्त वलवान पुरुष थे। वे उसी समय वणिक्-उपहासकारी भाटी मण्डली में सम्मिलित हो गये, उन को न पहचान कर उस तेजस्वी युवक भाटी ने कहा कि- "साहव क्या किया जाय वनिये तो पुराना सड़ा बोदा अन्न देकर रुपया ठगना चाहते हैं, भला अनाज की विना परीक्षा किये मैं उसे कैसे ले सकता हूं"। युवक भाटी के इस व्यङ्गपूर्ण वचन को सुन कर महाराज ने मुस्करा कर उस युवक से कहा कि "भाई साहव! नगर के वनिये वडे चालाक होते हैं, उन्हों ने पहले से ही जान लिया है कि आप के पास रुपया नहीं है इसी से तो वे आप का मज़ाक कर रहे हैं"।

महाराज के वचनों से उत्तेजित हो कर उस युवक ने अति शीघ्रता से अपनी कमर में वंधी हुई रुपयों की थैली को खोल कर उस में से एक रुपया निकाल कर महाराज के हाथ में दिया। महाराज ने उस से वात करते हुये अपने अंगूठे के जोर से उस रुपये के तमाम अक्षरों को उड़ा कर युवक से कहा "भाई साहव! भला इस खोटे रुपये का नवीन अन्न आप को कौन देगा"। युवक ने उस विना अक्षरों के रुपये को महाराज के हाथ से ले कर तुरन्त ही एक दूसरा रुपया महाराज के हाथ में दिया। मुस्कराते हुये महाराज ने उसी

समय उस को अपने अँगूठे के ज़ोर से चाँदी की टिकड़ी बनाकर उस युवक के हाथ में देते हुये उस से कहा "ठाकुर साहब ! मालुम होता है कि आप ऐसे ही खोटे रुपयों की नौली भर कर बाजार में सौदा खरीदने आये हैं, भला राजधानी के चतुर बनिये आप को इन खोटों रुपयों का नवीन अनाज कैसे दे सकते हैं "। महाराज के इन व्यङ्गपूर्ण वचनों से वह युवक बहुत ही लज्जित हुआ।

राजधानी का आपणिक वर्ग महाराज के प्रबल पराक्रम से पहले ही से परिचित था। उस में से एक ने धीरे से उस युवक से कहा कि तुम जानते नही हो-ये परम प्रतापशाली महाराज केशरीसिंह हैं। उस बनिये के मुख से महाराज का नाम सुनते ही वह युवक अत्यन्त आतंकित और लज्जित हो कर अधोमुख किये हुये तुरन्त ही वहां से रफू चक्कर हो गया। महाराज केशरीसिंहजी के पराक्रम को प्रकट करने वाली बहुत सी बातें इस प्रदेश में प्रचलित हैं।

निम्न लिखित दोहा उन की श्रेष्ठ शासनप्रणाली तथा वीरता की अभी तक परम पुनीत स्मृति दिलवा रहा है।

> धज वड़ वल केहर सधर दुभ्भल अरि घट डाट।
> वें हुए नाहर बाकरी पाया एकण घाट ॥

महाराज केशरीसिंह की विद्यमानता में विकुमपुर के सामन्त वरसिंह शिवसिंह ने स्वतन्त्र होने का प्रयत्न किया। वह बीकानेर महाराज की सहायता प्राप्त कर के महारावलजी की आज्ञा की प्रत्यक्षतया अवहेलना करने लगा। उस को उपयुक्त दण्ड देने के लिये महाराज केशरीसिंहजी ने अपने लघु भ्राता महाराज छत्रसिंहजी को सेना के साथ विकुमपुर भेजा। महाराज छत्रसिंहजी ने छः मास पर्यन्त अपनी सेना

के साथ विक्रमपुर को घेर लिया। विक्रमपुर के अधिपति शिवसिंह इस घिराव से तंग आकर रात्रि के समय अपने दुर्ग में से निकल कर बीकानेर राज्य को भाग गये।

महाराज छत्रसिंहजी ने दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। विक्रमपुर के सामन्त की अधीनता में इस घटना से कुछ वर्ष पूर्व सब मिलाकर चौरासी ग्राम थे, परन्तु महारावल के साथ बारम्बार विद्रोह करने के कारण इस समय उन की सन्तति के पास केवल आठ ही ग्राम रह गये हैं; अन्य सब ग्राम खालसा हो गये हैं।

महारावल रणजीतसिंह के राजत्व काल में कप्तान बीचर साहब ने भाटी राज की सीमा निश्चित की। उन्हों ने बड़ी बुद्धिमानी से बहावलपुर और बीकानेर के राज्य का सन्तोषजनक निपटारा करवा दिया। परन्तु सम्वत् १८०८ में जोधपुर राज्य से जैसलमेर की सीमा का निपटारा कप्तान सिवल साहब सन्तोषजनकतया न कर सके। सिवल साहब के निपटारे से असन्तुष्ट हो कर, सीमा निर्धारणार्थ जैसलमेर की तरफ से नियुक्त हुये राजपुरोहित सरदारसिंहजी ने आत्महत्या करली।

इसी समय बर्सलपुर के राव मानसिंहजी के परलोकवास होने पर उन के पुत्र साहब दानजी की बाल्यावस्था में महाराज बीकानेर ने बर्सलपुर को अपने अधिकार में लाने का प्रयत्न किया परन्तु मृत राव मानसिंहजी की बुद्धिमती धर्म्मपत्नी के जैसलमेर में आकर बीकानेर महाराज की दुरभिलाषा की सूचना देने पर महारावलजी ने बर्सलपुर की रक्षा के लिये बहुतसी सेना के साथ अपने भूतपूर्व दीवान के पुत्र महता सोमसिंह को बर्सलपुर भेज दिया। महता ने कई दिन

वहाँ रह कर पसलपुर की रक्षा की, और भविष्य के लिये भी वहाँ पर सर्व प्रकार की सुव्यवस्था करके वह जैसलमेर को लौट आया।

महारावल रणजीतसिंहजी के राजत्व काल में सन् १८५७ तथा सम्वत् १९१४ में भारत में भयंकर सिपाहीविद्रोह हुआ। बुद्धिमान् महारावल ने शरणागत यूरोपियनों की अच्छे प्रकार रक्षा की। महारावल के इस सहानुभूतिप्रदर्शक कार्य्य से वृटिश सरकार उन पर अत्यन्त प्रसन्न हुई।

सम्वत् १९१८ में महाराज केशरीसिंहजी की कन्या का जोधपुर नरेश तख्तसिंहजी से, तथा महाराज छत्रसिंहजी की कन्या का जोधपुर के महाराजकुमार प्रतापसिंह (इस समय ईडर के नरेश तथा सर, कर्नल आदि अनेक उपाधियों से विभूषित) से हुआ। महारावलजी के राजत्व काल में प्रधान शासनकर्ता तो महाराज केशरीसिंह ही रहे परन्तु अल्प समय के लिये उन की अन्तावस्था में व्यास धनुजी ने और उन के पश्चात् महता नथमलजी ने प्रधान मन्त्री के पद को प्राप्त किया था। महारावल रणजीतसिंहजी के स्वर्गवास के पश्चात् उन के लघुभ्राता, महाराज केशरीसिंहजी के कनिष्ठ पुत्र, वैरीसालजी सम्वत् १९२० की ज्येष्ठ शु० ११ को महारावलपद पर अभिषिक्त हुये। वृटिश सरकार और भाटी राज्य की प्रजा के आग्रह करने पर कुमार वैरीशाल ने बड़ी कठिनता से रावलपद को स्वीकार किया। भूतपूर्व दोनों (गजसिंह और रणजीतसिंह) महारावलों के अपुत्रावस्था में परलोकवास होने के कारण से या स्वभाव से ही निवृत्तिमार्गप्रिय होने के कारण, जो कुछ हो, १४७ कुमार वैरीशाल ने सम्वत् १९२१ की कार्तिक कृष्णपक्ष में रेजीडेंट साहब के अनुरोध से अनिच्छापूर्वक स्वतः प्राप्त राज्य को स्वीकार किया।

कुमार वैरीसाल के राजपद पर अभिषिक्त होने के लिये सहमत होने पर सम्वत् १६२३ की वैशाख शुक्ला १३ को उन को गवर्नमेंट ने राजसिंहासन पर वैठा कर महारावल वना दिया। नवीन महारावल को अभिवादन करने के लिये जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, वीकानेर, कोटा वूंदी, कच्छ भुज, पटियाला, कपूर्थला, वहावलपुर, खैरपुर, नरसिंहगढ़ आदि राज्यों की तरफ से उन के उच्चकर्मचारीगण अभिवादन करने के लिये आये। महारावल ने राजपूताना और पंजाव तथा सिंध प्रान्त के प्रसिद्ध राज्यों से समागत कर्मचारीयों का यथोचित आदर सत्कार करके उन को अपने २ देश को विदा किया।

महारावल वैरीशालजी के राजसिंहासन पर विराजमान होने के तीन वर्ष के पश्चात् अर्थात् सम्वत् १६२५ में वड़ा भारी दुष्काल पड़ा। महारावलजी ने राजकोष में से वहुत सा द्रव्य व्यय करके अपनी प्राणप्रिया प्रजा की रक्षा की। महारावल जी की कार्य निपुणता से प्रसन्न होकर रेजीडेण्ट साहव ने उन की भूरि २ प्रशंसा की।

सम्वत् १६२६ की पौष कृष्ण ६ षष्ठी को महारावलजी के वीर पिता महाराज केशरीसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। धर्म्मात्मा महारावलजी ने वड़ी धूमधाम से उन की अन्त्येष्टिक्रिया करवाई। सम्वत् १६२७ में महारावलजी ने अपनी रियासत में दौरा किया। वे सम, सहगढ़, घोटड़ू खुयियाला, तणोट, कृष्णगढ़, वूयली, नाचना (मोहनगढ़) देवा आदि अपनी रियासत के प्रसिद्ध २ दुर्गों को देख कर माघ मास में वापिस राजधानी को पधारे। सम्वत् १६३० में डूंगरपुर के रावलजी उदयसिंहजी की कन्या शृङ्गार कुमर के साथ महारावलजी साहव का विवाह हुआ।

उक्त विवाह में महारावलजीने एक लक्ष मुद्रा चारण आदिकों को पुण्यार्थ प्रदान की। सम्वत् १९३१ में जोधपुर महाराज वखतसिंहजी के पौत्र कुमार फतहसिंहजी जैसलमेर पधारे। महारावलजी ने उन का समुचित आदरसत्कार किया। कुमार फतहसिंह ने पांच मास पर्य्यन्त जैसलमेर में निवास किया। महारावलजी ने एक सहस्र मुद्रा उन के मासिक हाथखर्च के लिये नियत करदी, और जाते समय उन का विवाह अपने काका छत्रसिंहजी की द्वितीय कन्या के साथ करवा दिया। सम्वत् १९३३ में प्रथम दिल्लीदरवार हुआ भारतवर्ष भर के राजे महाराजे उस में सम्मिलित हुये परन्तु अस्वस्थतावश महारावलजी उस में सम्मिलित न हो सके। इस से रेजिडेंट साहव की तरफ से पटनपुर की छावनी के सेनापति महोदय यहां आये। आपने महाराणी विक्टोरिया का साम्राज्ञीपद पर अभिषिक्त होने का महोत्सव जैसलमेर में मनाया। महारावलजी ने उक्त कर्नेल साहव का अत्यन्त आदर सत्कार किया। महारावल श्री वैरीशालजी धर्म्मभीरु तथा ब्रह्मण्य थे। उन्हों ने रावलपद पर अभिषिक्त होकर किसी के दिल को न दुखाया। जैसलमेर की राजभक्त प्रजा आज तक उन को राजा परीक्षित के नाम से स्मरण करती है। इन के राजत्वकाल में महता नथमल इस राज्य के प्रधान आमात्य रहे। विक्रमाब्द १९४८ अर्थात् इस्वी सन् १८९१ के मार्च मास की १० तारीख के प्रातःकाल के साढ़े दस वजे धर्म्मात्मा महरावल श्री वैरीसालजी स्वर्गलोक पधारे। आपने यद्यपि तीन विवाह किये थे परन्तु अन्तावस्था पर्य्यन्त आप के एक भी सन्तति न हुई। आप के स्वर्गवास के अनन्तर राज्य के स्वार्थी कर्म्मचारियों ने सम्मिलित हो कर महारावल मूलराज के पौत्र महासिंहजी के

कनिष्ठ पुत्र छत्रसिंहजी के पौत्र बालक सामसिंह को राज्यसिंहासन का भावी उत्तराधिकारी बनाया। महारावल श्रीमूलराज जी के ज्येष्ठ पौत्रों की सन्तति की विद्यमानता में उन के कनिष्ठ पौत्र के बालक-पुत्र को राजसिंहासन का भावी उत्तराधिकारी बना कर स्वार्थी कर्मचारीमण्डल ने अपने स्वार्थसाधन का अच्छा अवसर प्राप्त किया।

कुमार सामसिंह उस समय केवल पांच वर्ष का निर्बोध बालक था। कर्म्मचारी मण्डल ने उस को महारावल बनाकर रियासतभर में लूट खसोट मचावादी। स्वार्थी कर्म्मचारियों के अन्याय की पुकार बृटिश सरकार के कानोंतक पहुंची। रेजीडेंट साहब ने देश में सुख शान्ति स्थापित करने के लिये अपनी तरफ से कच्छनिवासी जगजीवन नामक मनुष्य को इस राज्य का प्रधान अमात्य नियुक्त किया परन्तु प्रजा के दुर्भाग्य से वह इस रियासत के रीति रिवाजों से अत्यन्त अनभिज्ञ था। उस के अशिष्टानुमोदित शासन में प्रजावर्ग के कष्टों की द्विगुणित वृद्धि हुई। वह अंग्रेजी तथा फारसी भाषाओं से सर्वथा अनभिज्ञ था, उस को जरासा भी कानून का ज्ञान न था। उस के अजीव फैसलों को देख कर जब कभी इस देश का सुपरिचित शिक्षित जन उस को प्रेमभाव से उस के किये हुये फैसलों को कानून से अप्रमाणित बतलाता तब वह प्राय. मुसकरा कर कह देता था कि " कानून हमारी जबान में है "। इस प्रकार अनुमान दश वर्ष पर्य्यन्त बालक महारावल के पठन काल में जगजीवन ही इस रियासत की प्रजा का भाग्यविधाता रहा। इस के मनमाने शासन से इस देश की समस्त प्रजा असन्तुष्ट हो गई, परन्तु इस ने प्रजा के सुभीते के लिये जरासा भी ध्यान न दिया। अन्त में इस की प्रबल स्वेच्छा-

चारिता से उत्तेजित होकर, पड़िहार (इस समय माली) राजपूत जाति के तोलिया नामक एक युवक ने, अपने घर से प्रधानन्यायालय को जाते हुये दीवान साहब पर तलवार से आक्रमण किया। उस की तलवार के एक वार से ही दीवान जी का मस्तक फट गया परन्तु कच्छी देश की पगड़ी ने उस को बहुत कुछ बचा लिया। आक्रमणकारी दूसरा वार करना ही चाहता था कि इतने में दीवानजी के अंगरक्षकों ने मिलकर तोलिये को पकड़ लिया। आहत अमात्य छः मास पर्य्यन्त खाट पर पड़े रहे। बड़ी कठिनता से वह आरोग्य लाभ करके रेजीडेंट साहब की कृपा से पेन्सन प्राप्त कर स्वदेश को चले गये।

जगजीवन के चले जाने पर जैसलमेर की प्रजा के सौभाग्य से भाटिया जाति (भाटी जाति से ही भाटिया जाति का प्रादुर्भाव हुआ है) के सुविद्वान् बैरिस्टर एट ला लक्ष्मीधर जी सपट इस रियासत के दीवान (प्रधानामात्य) नियुक्त हुये। आप के शासनकाल में इस रियासत की बहुत कुछ उन्नति हुई। आप ही ने प्रयत्नपूर्वक बालक महारावल को रेजीडेंट साहब से पूर्ण अधिकार प्राप्त करवाये। महारावल सामसिंह ने सम्वत् १९५८ में पूर्ण अधिकार प्राप्त करके अपने को १४८ शालिवाहन नाम से प्रसिद्ध किया।

महारावल के पूर्ण अधिकार प्राप्त करने पर प्रजा ने अत्यन्त हर्ष मनाया। विद्वान् अमात्य युवक महारावल को शासनकार्य में निपुण बनाने तथा प्रजा वर्ग के कल्याण के लिये बहुत से उपाय सोचने लगा। आप की प्रधानता में भाटी राज्य में किसी भी प्रकार का उपद्रव न हुआ परन्तु प्रजा के दुर्भाग्य से आप बहुत दिवस तक प्रधानामात्य के पद पर न रह सके।

आप ने युवक महारावल को प्रजा के हित साधनार्थ, बहुत कुछ समझाया परन्तु स्वेच्छाचारी नवीन महरावल उन के सद्विचारों से किसी प्रकार भी लाभ न उठा सके। ऐसी अवस्था में आपने अमात्यपद पर रहना अनुचित समझा। आपने नवीन महारावल की स्वेच्छाचारिता की अति वृद्धि देख कर तत्काल ही अपने पद के लिये विसर्जनपत्र दे दिया। आप के अलग होने से इस राज्य की पठित प्रजा को बड़ा दुःख हुआ। आप; महारावल के बहुत कुछ कहने पर अपने अनुज मिष्टर मुरारजी सपट को अपने पद पर बैठा कर, जोधपुर की रियासत में सीनियर मेम्बर के महत्वपूर्ण पद पर अधिष्ठित हुये।

नवीन महारावल ने नाममात्र के लिये मिष्टर मुरार जी को अमात्य बना कर राज्य का सर्व कार्य अपने हाथ में लिया। आपने केवल तेरह वर्ष पर्य्यन्त ही राज्य किया। आप के शासन में उल्लेखयोग्य कोई घटना नहीं हुई। सम्वत् १९७१ की वैसाख कृ० १ प्रतिपदा को आप अधिक मद्यपान करने से लोकान्तरवासी हुये। आपने सिरोही तथा धांगधड़ा के नरेशों की कन्याओं से विवाह किया था परन्तु उन मे से आप के कोई सन्तान न हुई। आप के अपुत्रावस्था में ही लोकान्तरवासी होने से भाटी राज्य के उत्तराधिकारी के विषय में विवाद उपस्थित हो गया। महारावल श्री मूलराजजी के पश्चात् भाटी राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी कुटिल और स्वार्थी अधिकारीवर्ग की करतूत से अपने समुचित सत्व से वंचित रहता चला आ रहा है परन्तु इस समय न्यायपरायण वृटिश गवर्नमेन्ट की कृपा से महासिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र की सन्तान ने ही अपने सत्व को प्राप्त किया है। सर्वसाधारण के समुचित

ज्ञान के लिये महारावल मूलराजजी की सन्तान का वंशानु-क्रम (नकशा) नीचे लिखा जाता है।

इस इतिहास के पाठकों को यह बात सम्यकतया ज्ञात है कि महारावल श्रीमूलराजजी के रायसिंह, कालसिंह और जैतसिंह नामक तीन पुत्र थे। महारावलजी की विद्यमानता में ही उन का ज्येष्ठ पुत्र अपने कुटुम्ब के साथ अत्याचारी सालिम की कुटिल नीति से भस्मीभूत हुआ। उन का मध्यम पुत्र कुमार लालसिंह अपने ननसाल (कृष्णगढ़) में घोड़े से गिर कर मर गया।

महारावलजी के कनिष्ठ पुत्र जैतसिंहजी के महासिंह नामक पुत्र हुआ। वह एकाक्षि होने से हिन्दुशास्त्रानुसार रा-ज्यका अधिकारी न हो सका। महासिंह की सन्तान का वंशा-नुक्रम इस प्रकार है— १ महारावलजी श्री मूलराजजी के पुत्र जैतसिंह जी , उन के महासिंहजी।

(महासिंह जी के वंशानुक्रम दूसरे पृष्ठ में है)

महासिंहजीके वंशानुक्रम

महासिंहजी के

१ तेजसिंह २ देवीसिंह ३ गजसिंह ४ फतहसिंह ५ जोधसिंह ६ केशरीसिंह ७ छत्रसिंह

भीमसिंह मानसिंह उमेदसिंह अनाड़सिंह अनाड़सिंह‡ खुशालसिंह‡

रणजीतसिंह वैरीशाल सुरतानसिंह‡

शिवदानसिंह अर्जुनसिंह

जुवारसिंह‡ सरदारसिंह सालिमसिंह खुशालसिंह † सामसिंह दानसिंह

जसवनसिंह जुवारसिंह सुरतानसिंह

‡ गोद आये।

† गोद गये।

उपरोक्त नकशा देखने से यह बात भली प्रकार मालुम हो सकती है कि महारावल मूलराजजी के परलोकवास के अनन्तर तेजसिंह जी और उन के पश्चात् भीमसिंह जी की अविद्यमानता में महाराज मानसिंहजी ही महारावल पद के वास्तविक उत्तराधिकारी है परन्तु मेहता सालिम ने स्वार्थवश बालक गजसिंह को महारावल बनाया। उन के पश्चात महाराज महासिंहजी के ज्येष्ठ पुत्रो की सन्तान की विद्यमानता में उन के षष्टम पुत्र केशरीसिंहजी के दोनों कुमार (रणजीत सिंह और वैरीसाल) राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुये, इस अन्याय से असन्तुष्ट होकर महाराज मानसिंहजी बीकानेर राज्य में चले गये थे परन्तु महारावल वैरीसालजी के मनाने पर वे स्वदेश को लोट आये।

महारावल वैरीसालजी के परलोकवास के अनन्तर, महाराज मानसिंहजी ही भाटी राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी थे परन्तु इस समय भी सामयिक कर्म्मचारीमण्डल ने अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये महासिंहजी के कनिष्ठपुत्र (सात वें पुत्र छत्रसिंहजी) के पौत्र पांच वर्ष के बालक (सामसिंह) शालिवाहन को भाटी राज्य का भावी उत्तराधिकारी उद्घोषित किया। महारावल शालिवाहनजी भी अपुत्रावस्था में ही परलोकवासी हुये। इस अवस्था में बृटिश सरकार ने न्याय विचार कर वृद्ध महाराज मानसिंहजी के बुद्धिमान् पुत्र जुवारसिंह को भाटी राज्य का उत्तराधिकारी माना। महाराज मानसिंह जी अभी तक विद्यमान है अतः सब से प्रथम उन्ही का सत्व है परन्तु वे अत्यन्त वृद्ध हैं अतः उन के युवा पुत्र जुवारसिंह ही सम्वत् १६७१ आषाढ़ कृष्णा १२ के शुभ दिवस में महारावल बनाये गये।

बृटिश सरकार का महारावल मूलराजजी के साथ ही सन्धिबन्धन हुआ है; उस सन्धियन्धन की दूसरी धारा के अनुसार बृटिश सरकार का यह परम कर्तव्य है कि वह क्रमशः महारावलजी श्री मूलराजजी के ज्येष्ठ पुत्र की सन्तान ही को राज्यसिंहासन दिलावे परन्तु भूतपूर्व चारों ही (महाराव-ल गजसिंह, रणजीतसिंह, बैरीसाल और शालिवाहन) महा-रावल जैसलमेर राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी न थे। माननीय बृटिश सरकार बहुत काल तक राजपूताना के अति प्राचीन भाटी राज्य की आभ्यन्तरिक परिस्थिति से पूर्णतया अभिज्ञ न थी। परन्तु इस विंशति शताब्दि में बृटिश जाति का पूर्ण प्रताप भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में छाया हुआ है। अब वह भारतवर्ष की हरेक बात से पूर्ण परिचित है, ऐसी अवस्था में उस ने महारावल मूलराजजी के वास्तविक उत्तराधिकारी को महारावल बना कर अपने अखण्ड प्रताप और न्यायप्रियता का पूर्ण परिचय दिया है। और एक बात और भी है— वह यह है कि महासिंहजी के कनिष्ठ पुत्र छत्रसिंहजी महारावल जसवन्तसिंहजी के चतुर्थ पुत्र सरदारसिंहजी के दत्तक पुत्र होने से लाठी प्रदेश के उत्तराधिकारी हुयेथे अतः उन की सन्त-ति का राज्यसिंहासन से और भी अधिक दूरी का सम्बन्ध हो गया। अस्तु। सम्वत् १९७१ में महारावल शालिवाहनजी के परलोकवास के अनन्तर कुमार जुवारसिंह भाटी राज्य के भावी उत्तराधिकारी हुये है। आप को सम्वत् १९७१ में बृटिश-गवर्नमेन्ट की तरफ से पूर्ण अधिकारप्राप्त हुये हैं।

आप ने मेओ कालेज में कई वर्षतक अंग्रेजी भाषा का समु-चित ज्ञान प्राप्त किया है। इस समय राज्य भर में शिक्षा के लिये नियमानुसार एक भी विद्यालय नहीं है और न राजधानी

में सफाई तथा रोशनी का ही कोई प्रबन्ध है। आशा है कि नवीन महारावल जनता के सुभीतों की तरफ समुचित ध्यान देकर शीघ्र ही प्रजाप्रिय बनने का पूर्ण सौभाग्य प्राप्त करेंगे। आप से जैसलमेर की सुपठित प्रजा को बहुत कुछ आशा है।

॥ इति शुभम् ॥

परिशिष्ट ।

भाटी जाति की अति प्राचीनता के अकाट्य प्रमाण ।

कर्नेल टाड अपनी किताब में लिखते हैं कि वज्रनाभ के वंश में जयसिंह नामी सिन्ध के पश्चिम में जा रहा उस की औलाद में गज नामी राजा हुआ। उसने उस देश में गज़नी नाम का किला बनाया। परन्तु जब पश्चिम वालों ने उस पर चढ़ाइयां कीं राजा गज़ ने अपने बालबच्चों को जिस में सालवाहन भी था सिन्ध देश में भेज दिया और आप अकेला सेना सहित क़िला की रक्षा करने लगा। जब वह लड़ाई में मारा गया तो मुसलमानों का क़ब्ज़ा उस पर हो गया और सालवाहन ने सालवाहनपुर बसा कर उस को राजधानी बनाया। उस के मरने के बाद बालन्द गद्दी पर बैठा। उस के सात बेटे भाटी और भूपति आदि थे। भूपति का बेटा चकीता गज़नी का हाकिम ठहराया गया। चकीता ने ग़ज़नी पर हमला कर के उस को अपने कब्जे में कर लिया परन्तु उसकी सेना के सरदारों ने जो बहुत मुतअस्सिब मुसलमान थे उस्से कहा कि जो तुम मुसलमान हो जाओ तो हम तुम को बुख़ारा का राज दिला दें। वह कुछ तो लालच में और कुछ डर से मुसलमान हो गया जब से उसकी औलाद चुग़ताई मुग़ल कहलाती है।

बालन्द के दूसरे बेटे भाटी के बेटे मंगल रावको जब ग़ज़नी की सेना ने जा घेरा तब वह मरुस्थल में जा बसा। उस के

खेरो ने टनोट का किला बनाया । उसकी औलाद अपने बड़े के नाम से भट्टी कहलाने लगी* ।

बम्बे के गवरनर मौन्ट इस्टुवार्ट एलफन्स्टन ने हिन्दुस्तान के इतिहास में लिखा है कि जैसलमेर के राज की बुन्याद पहिली किताबों से सन् ७२१ ई० से मालूम होती है। यह राज यदुवंशियों ने नियत किया था अब तक उन्ही की औलाद में चला आता है । मुलतान के दक्षिण में भाटियों का राज़ था । महमूद ने सन् १००४ ई० में उन पर चढाई की जब से वे भाग निकले महमूद ने पीछा किया अन्त को राजा ने सिंध के मैदान में बड़ी बहादुरी से जानदी ।

जेनरल कनिंघाम लिखते हैं कि भाटिया यानी भट्टी यह शब्द भट्ट से बनाया गया है जिस के अर्थ शूरबीर और संग्राम भूमि में लड़ने वाले के है। जेसलमेर के हिन्दू यादव भट्टी कहलाते हैं। पंजाब के इतिहास से भाटियों की पुरानी से पुरानी राजधानी ग़ज़नीपुर (ग़ज़नी) मालूम होती है ।

एल्य साहबने लिखा है कि सालवाहन के बेटे भट्टीके या साम बड़े बेटे भूपति के नाम से भाटिया इस जाति का नाम प्रसिद्ध हुआ है।

गिलेडवन साहब ने आईन अकबरी में लिखा है कि भट्टी और जाडीजा यादव की शाखा है।

वेलफोर्ड साहब लिखते हैं कि भट्टियों की सब से पुरानी बस्ती भटनेर है।सन् ७८ ई० में बड़ा सालवाहन और उस का बेटा रिसालु यादव की सेना ले कर इस तरफ़ आया और उस रिसालु ने सियालकोट बसाया । भाटियों की जाति वाले

---

* इसी खानदान में चंगेज खा था—तीमूर के दादा का परदादा चगताई अमीरुल उमरा था और बाब की मा चगताइ खानदा से थी ।

बहुत से सालवाहन की औलाद वतलाते हैं। कोई २ शक राजा या उसके वेटे की औलाद कहते हैं।

मिस्टर पच इल्यट साहब के इतिहास में लिखा है कि मुसलमानों के पहिले हमले से ले कर तैमूर के समय तक भाटियों की वडी धूरधानी और उन के राज की वड़ी दुर्दशा हुई। इस का हाल विस्तार पूर्वक उन्हों ने अपनी किताव मे लिखा है। जाडीजा जो भट्टियों के समीपी सम्बन्धी हैं उन के इतिहास में यह लिखा है कि अत्रि मुनि की औलाद यादव के वंश में हम लोग हैं। जव अनिरुद्ध का विवाह ऊषा से हुआ और वह सुसराल गई तो कोऊ भांड की वेटी रामा भी उस के साथ गई। उस के साथ साम्व श्रीकृष्णके वेटेका विवाह जो जाम्बवती के गर्भसे था हुआ। उस से उश्नक पैदा हुआ। वाणासुर के मरने के पीछे शोनतपुर की गद्दी पर कोऊ भॉड वैठा। उसके कोई पुत्र न था। उसने अपने नवासे उश्नक को द्वारका से वुला कर शोनितपुर और मिस्र (इजिप्ट) की गद्दी पर विठाया। उस की औलाद में देवेन्द्र नामी राजा हुआ। उससे मुसलमानों के नवी मोहम्मद ने मिस्र छीन लिया और वह और उसके चारों वेटे भाग गये। जो सव से वड़ा उग्रसेन था वह मुसलमान हो गया। उस का नाम अश्वपति पड़ गया। दूसरा गजपति था। वह सूरत की ओर गया और वहाँ राज किया। उसकी औलाद चुड़ासिआं कहलाती है। तीसरे का नाम नरपति था जिस ने फ़ीरोज़ शाह को मार कर गज़नी छीन ली और आप राज किया। चौथा भूपति जिस की औलाद भट्टी कहलाती वह सिंध में आया और कच्छ में भी राज किया।

॥ इति ॥

भाटीवंश से भाटिया जाति का घनिष्ट सम्बन्ध।

यवन गण के प्रवल पराक्रम से पराक्रान्त होकर वहुत से भाटी लोग विक्रम संवत् १२०८ के लग भग अपने ही पूर्वजों की जन्मभूमि भावलपुर, मुलतान, नगरठंट्ठ और पंजाव की जुदी जुदी वस्तियों में निवास करने लगे। क्षात्रधर्म्मपरिभ्रष्ट भाटी जाति का अधिक समुदाय भाटिया नाम से प्रसिद्ध हुआ।

भाटियों ने अपने कुल गुरु पुष्टिकर ब्राह्मणों की आज्ञा से उनचास पीढ़ी के अन्तर से आपस में ही विवाह सम्बन्ध करना निश्चित किया।

भाटियों के नुख इस प्रकार हैं :—

१ परासर गोत्र।

१ राय गाजरया २ राय पञ्चलोड़िया ३ राय पलीजा ४ राय गगला ५ राय सराकी ६ राय सोनी ७ राय सुफला ८ राय जिया ९ राय मोगया १० राय घवा ११ राय रीका १२ राय जयवन १३ राय कोढ़या १४ राय कोवा १५ राय रड़िया १६ राय कजरया १७ राय सिजवल्ला १८ राय जियाला १९ राय मलन २० राय धवा २१ राय धीरन २२ राय जगता २३ राय निसात।

२ साणस गोत्र।

१ राय दुतया २ राय जव्वा ३ राय ववला ४ राय सुआडा ५ राय धवन ६ राय डंडा ७ राय ठगा ८ राय कंधिया ९ राय उदेसी १० राय वाढूचा ११ राय वलाये।

३ भारद्वाज गोत्र।

१ राय हरिया २ राय पदमशी ३ राय मेदया ४ राय चांदन

५ राय खियारा ६ राय थुला ७ राय सोढिया ८ राय बोड़ा ९ राय मोछा १० राय तबोल ११ राय लखनवन्ता १२ राय ढकर १३ राय भुदरिया १४ राय मोटा १५ राय अनधड़ १६ राय ढढाल १७ राय देगचन्दा १८ राय आसर।

४ सुधर वंश गोत्र।

१ राय सपटा २ राय छछैया ३ राय नागड़ा ४ राय यवला ५ राय परमला ६ राय पोथा ७ राय पोणढग्गा ८ राय मथुरा

५ मधुवाधस गोत्र।

१ राय वैद २ राय सुरया ३ राय गूगल गांधी ४ राय नयेगांधी ५ राय पंचाल ६ राय फुरासगांधी ७ राय परेगांधी ८ राज्य जुजरगांधी ९ रायप्रेमा १० राय वीवल ११ राय पोवर।

६ देवदास गोत्र।

१ राय रामैया २ राय पवार ३ राय राजा ४ राय परिजिया ५ राय कपूर ६ राय गुरु गुलाव ७ राय ढाढर ८ राय करतरी ९ राय कुकण।

७ ऋषि वंशी।

१ राय मुलतानी २ राय चमुजा ३ रायकरन गोना ४ राय देप्पा।

भाटियों की वसापत।

भाटियों की वसापत पंजाव सिन्ध मारवाड कच्छ हालार सौराष्ट्र, काटियावाड़ खान देश भुमई और पश्चिमोत्तर प्रदेश में है। यह लोग अपने २ रहने की ही जगह हीं को अपना देश जानते है और वहीं व्यवहार लेन देन तिजारत खेती जमींदारी और सरकारी नौकरिये करते है। भाटियों की वड़ी शाखा अपना देश छोड कर परदेश में व्यापारादि कार्य्य वश घूमती है।

अरवस्तान अफरीका आदि प्रदेशों में समुद्र की राह से जाया करते थे। समुद्र का रास्ता उस समय बड़ा भयभीत था तो भी ये लोग राजपूत होने के कारण कुछ भी भय नहीं करते थे।

किन्तु जहाजों के साथ फौज और तोप वन्दूक आदि सब प्रकार के हथियार रखते थे और एक जहाज पर १८ से २४ तक तोपें लगाते थे और सब लडाई का असवाब रखते थे। रास्ते मे वगैर एक दो लड़ाई के नियत स्थान पर नहीं पहुचते थे। इसी समय में वसरा, अवुशहर, मस्कत, वगदाद अदन, शहरकला, इडएडा, मशवह आदि अरवस्तान के बन्दरों मे रहते थे। वसरे में गोविन्द राय का मन्दिर वनवाया था जव वहां दुष्टाचार से क्लेश होने लगा तो वहाँ से मूर्ति मस्कत में ला रक्खी। तीन सौ वर्ष हुए अब तक वहां रक्खी हुई है। अरव और अफरीका के सब मुल्कों की सारी वस्तियों मे भाटिये लोग अब तक बसते है और हिन्दुस्थान और योरुप की चीजें अरव और अफरीका में और अरव अफरीका की चीजें हिन्दुस्थान और योरुप मे तिजारत के लिये ले जाते है। हाथीदांत, माहीदान, कौड़ा, कौड़ी, गैडे का चमड़ा, कचकणां, सीप आदि का व्यवहार बड़े २ वैष्णव करते हैं, और कुछ ऐब नही समझते हैं। ब्रह्मदेश, भलाई, कोस्ता, जावा, वतादु आदि में भाटिये लोग माल से माल बदल कर लाते हैं और वहां बहुत होशियारी से हतियार वन्द रहते हैं। दूसरा पेरा वज्रनाभ को अनुमान से पांच हजार वर्ष हुए परन्तु अब तक वैदिक धर्म्म की छाप भाटियों के हृदय पर जमी हुई है। अनुमान से दो सौ वर्ष से वल्लभाचार्य्य की संप्रदाय में आने लगे हैं। जगन्नाथ जी के समय में जो आशोज सुदी ५ संवत् १८०३ मे

पैदा हुये भाटिया जातियों ने यह नियम कर रक्खा था कि ५० पचास वर्ष से कम उम्र की स्त्री दर्शन को न जावे । कच्छी, हालाई, पुरीजा, काठिया वाड़ी, गुजराती और धरन गांव वाले आपस मे विवाह सम्बन्ध करते हैं । जैसलमेर, सिन्ध, पजाव, पश्चिमोत्तर देश वाले आपस मे विवाह सम्बध करते हैं ।

वम्बई ।

मांडवी वाले मान जी जीवा राज कच्छ की दिवानी पर नियत थे जव लीलाधर को जूनागढ की दीवानी मिली थी प्रथम अनुवाद करता मथुरादास लव जी के वड़े सात आठ पीढी तक सुलतान मस्कत और जेंज़िवार के मुल्को मे मुस्ता-जरी करते थे और इस काम मे उन्हो ने वड़ी दौलत पैदा की और धर्म्म कार्य्य में वहुत खर्च किया ।

सेठ मुरारजी गोकुलदास जी वडा नामी हो गया है वम्बई की कौन्सिल मे मेम्वर था और सी. एस. आई. की पदवी थी ।

सेठ गोकुल दास तेजपाल यूनीवरसिटी का फ़ेलो था वह इस जमाने के वड़े धर्मिष्ठो मे गिना जाता है उस के धर्म्म खाते मे सत्रह लाख की पूंजी है ।

पांच छः भाटिये जस्टिस् आफ़ दी पीस की पदवी पर नियत हैं ।

सेठ मूलजी जेठा ने श्री द्वारकानाथ जी का मंदिर वनवाया था । सेठ विसरा माऊ जी ने ऊपा की मंडल और द्वारका की सडक वनवाई और द्वारका में डिस्पैन्सी नियत की ।

सेठ मान जी नरसी जसराम शिव जी और सेठ देवजी गगाधर ने भी परोपकार के काम किये हैं ।

सेठ जीव राज वालुक द्वारकादास वसन जी ने पुत्रीपाठ-शाला वनाई और धर्म्मशाला, तालाव, कुये आदि रास्तो पर वनाये। वालुकेश्वर में दरया महल के नाम का महल वनाया है और फिरंचर और म्यूज़ियम आदि में पाँच लाख रुपया खर्च किया है। वहुत जवाहिरात उस के खजाने में हैं। सानसी नाम का प्रसिद्ध हीरा उस के यहां है। यह हीरा योरूप के कई वादशाहों के खज़ानों में रह चुका है जव उस का मूल्य चार लाख गिना जाता था। अव एक लाख ५० पचास हज़ार को मोल लियागया है।

आर्य्यावर्त देश में इस जाति के वड़े २ प्रतिष्ठित सरकारी मुलाज़िम है और वहुत से व्यवहार मे वड़े निपुण है ॥

॥ इति ॥